अलेक्सान्द्र ज़ेवेलेव

समाजवाद तथा पूंजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्रश्न

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अलेक्सान्द्र ज़ेवेलेव

समाजवाद तथा पूंजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्रश्न



प्रगति प्रकाशन

मास्को

अनुवादक : बुद्धि प्रसाद भट्ट

АЛЕКСАНДР ЗЕВЕЛЕВ

НАЦИОНАЛЬНЫЙ ВОПРОС
В УСЛОВИЯХ СОЦИАЛИЗМА И КАПИТАЛИЗМА

На языке хинди

З $\frac{11302-079}{014(01)-78}$ 617—77

सोवियत संघ में मुद्रित

विषय-सूची

१ : राष्ट्र क्या है,
राष्ट्रों का जन्म कैसे और कब हुआ?

मानवजाति एक भी है और बहुरूप भी। वह जैविक दृष्टि से, और इस दृष्टि से एक है कि वह सामान्य प्राकृतिक और सामाजिक नियमों के अनुसार विकास करती है। उसकी वहुरूपता विशेषतः इसमें प्रकट होती है कि लोगों को नस्लों और राष्ट्रों में विभाजित किया जाता है।

राष्ट्र एक ऐतिहासिक और अनित्य प्रवर्ग है। उसका अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य है। एक समय था जब राष्ट्र नहीं थे और एक समय आयेगा जब राष्ट्र नहीं रहेंगे।

राष्ट्रों के जन्म से पहले लोगों की समूहबद्धता के अनेक रूप अस्तित्व में आ चुके थे। ऐसा पहला रूप था गोत्र। गोत्र संबंधों के विकास के परिणामस्वरूप कई गोत्र एकीकृत हुए और क़बीला बना। राष्ट्र न तो तब थे, जब गोत्र समूहबद्धता का एकमात्र रूप था और न उस जगह ही होते हैं, जहां लोग क़बीलों के रूप में रहते थे या रहते हैं। समूहबद्धता के इन दोनों ही रूपों में लोगों की एकता रक्त तथा गोत्र-संबंधों पर आधारित होती है।

समाज के वर्गों में विभाजन के बाद गोत्रीय-क़बीलाई समूहबद्धता का स्थान एक नया रूप – जाति – ले लेता है। जाति कई क़बीलों के परस्परविलयन से बनती है। क़बीलों, क़बीलों के संघों और जातियों से ही राष्ट्र बने।

यह सहज ऐतिहासिक प्रक्रिया शनैः शनैः और जटिल ढंग से घटती है। ऐसा सोचना ठीक न होगा कि राष्ट्र समूहबद्धता के मध्ययुगीन रूप– जाति–का मामूली सिलसिला है। राष्ट्र का जन्म सामाजिक संबंधों के आमूल परिवर्तन के आधार पर होता है। राष्ट्रों की रचना की प्रक्रिया में निम्न बातें शामिल हैं: क़बीलों के संघों का निर्माण, जिसके दौरान क़बीलों के बीच आपस में आर्थिक और सांस्कृतिक संपर्क घनिष्ठतर होते जाते हैं; विभिन्न क़बीलों के बीच टकराव; संख्यावृद्धि के कारण आबादी का देशान्तरण; उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व का आविर्भाव; वर्ग विभेदन।

इन सब घटकों की क्रिया के फलस्वरूप क़बीलों में शनैः शनैः आपस में मिश्रण होता है, जिसके फलस्वरूप पहले के रक्त तथा गोत्र संबंधों का स्थान क्षेत्रगत तथा आर्थिक संबंध ले लेते हैं। इस तरह राष्ट्रों की रचना की प्रक्रिया घटती है और लोगों में वे लक्षण प्रकट होते हैं, जिन्हें हम आज राष्ट्रों के लक्षण कहते हैं।

कुछ उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट करें।

रूसी राष्ट्र का जन्म स्लाव और अन्य क़बीलों के परस्परविलयन से हुआ है। अंग्रेज़ राष्ट्र ब्रिटन, आंग्ल-सेक्सन और नार्मन क़बीलों और जातियों से बना है। फ़्रांसीसी राष्ट्र गालों, फ़्रैंकों, ब्रिटनों तथा जर्मनों के विलयन की उपज है। इतालवी राष्ट्र रोमनों, जर्मनों, एट्रस्कनों, यूनानियों, अरबों और अन्य क़बीलों तथा जातियों के मिश्रण का फल है। अमरीकी राष्ट्र की रचना आंग्ल-सेक्सन, आयरिश, जर्मन, फ़्रांसीसी, यहूदी और अन्य यूरोपमूलक लोगों से हुई है। यही बात बहुत से अन्य आधुनिक राष्ट्रों के बारे में भी कही जा सकती है।

मानवजाति की उत्पत्ति से संबंधित विज्ञान यह भी कहता है कि नये नृजातीय समूह न केवल गोत्रों एवं क़बीलों के मिश्रण के ज़रिये पैदा हुए, अपितु उनसे किन्हीं अन्य समूहों के बनने के ज़रिये भी अस्तित्व में आये।

इसका एक उदाहरण बुल्गार लोग हैं। नृजातिवृत्तीय तथ्यों के अनुसार वे स्लाव हैं, उनकी भाषा और संस्कृति स्लाव है। किन्तु अपने शारीरिक प्ररूप की दृष्टि से बुल्गार अन्य स्लावों से कोई मेल नहीं खाते। मानववैज्ञानिक गवेषणाओं से पता चला है कि अपनी शरीर-संरचना की दृष्टि से वे दक्षिण-पूर्वी बाल्कन के प्राचीन निवासियों–थ्रेसियनों–के बहुत

निकट हैं। इसका मतलब हुआ कि नृजातीय समूह के रूप में बुल्गारों की उत्पत्ति दक्षिण-पूर्वी बाल्कन के प्राचीन मूलवासियों के साथ स्लावों के विलयन के फलस्वरूप हुई।

ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। काकेशिया में ऐसा एक उदाहरण आज़रबैजान लोग हैं। उनकी भाषा तुर्क परिवार की है, उसे उन्होंने अपेक्षाकृत काफ़ी बाद में, वर्तमान सहस्राब्दी के आरंभ में, अपनाया था, जबकि शारीरिक प्ररूप की दृष्टि से उनका मूल बहुत प्राचीन है।

जिस समाज में वर्ग अस्तित्व में आ चुके होते हैं उसमें जाति की और फिर राष्ट्र की भी रचना पर राज्य की उत्पत्ति बड़ा प्रभाव डालती है। राज्य जाति के – और इसलिए राष्ट्र के भी – समेकन, दृढ़ीकरण में सहायक बनता है। उनका निर्माण कुछ निश्चित राज्य सीमाओं में होता है। किन्तु साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि कतिपय कारणों से बहुत सी जातियों की – राष्ट्रों के मामले में तो और भी – क्षेत्रीय सीमाएं परस्परव्यापी होती हैं और इसलिए राज्य सीमाओं से मेल नहीं खातीं। फिर एक ही राज्य में प्राय: कई जातियां पायी जा सकती हैं। इसका एक उदाहरण पूर्वी यूरोप के राज्य थे।

राष्ट्र की सारवस्तु, उसके लक्षणों तथा आंगिक विशेषताओं का निरूपण सबसे पहले मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने किया। कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स ने बताया कि राष्ट्रों का जन्म पूंजीवादी उत्पादन रीति के आविर्भाव, सामन्तवाद पर पूंजीवाद की विजय और पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की स्थापना से जुड़ा हुआ है।

किन्तु वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के प्रणेताओं की कृतियों में "राष्ट्र" (नेशन) शब्द का प्रयोग ऐसे बहुत सी जातियों के प्रसंग में भी हुआ है, जो पूंजीवाद के युग में प्रवेश करने से अभी बहुत दूर थीं। मिसाल के लिए, उन्होंने प्राचीन फ़िनिशियाइयों को राष्ट्र कहा था* और महामोराव राज्य (नौवीं – दसवीं सदी) के संदर्भ में "चेक राष्ट्र" का प्रयोग किया था।** कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि रोमन देवी-देवताओं में "सभी राष्ट्रों"

---

* कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स: 'जर्मन विचारधारा' (१८४५–१८४६)।

** फ़्रे० एंगेल्स: 'जनवादी सर्व-स्लाववाद' (१८४९)।

के देवी-देवता पाये जा सकते थे।* इस तरह के प्रसंगों में "राष्ट्र" (नेशन) से मार्क्स और एंगेल्स का अभिप्राय जन से था, जिसका विकास उसकी अपनी विलक्षणता और अपने व्यवसाय से संबद्ध था और, जैसा कि उन्होंने लिखा, जिसने "आधुनिक जनगण के साझे इतिहास पर" अपनी छाप छोड़ी।**

मानवजाति और विशेषतः उत्पीड़ित जनगण इसके लिए मार्क्स और एंगेल्स के चिर आभारी रहेंगे कि उन्होंने राष्ट्रीय प्रश्न से संबंधित सिद्धान्त और कार्यक्रम बनाने के लिए आवश्यक वैचारिक आधार प्रस्तुत किया। उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया कि राष्ट्रीय उत्पीड़न पूंजीवाद की उपज है और यह उत्पीड़न वर्गीय उत्पीड़न का ही सिलसिला और अभिव्यक्ति है। साथ ही उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष भी सूत्रबद्ध किया: अन्य जातियों का उत्पीड़न करनेवाली जाति स्वतंत्र नहीं हो सकती,*** यदि कोई राष्ट्र अन्य राष्ट्रों का दमन करता है तो वह स्वयं भी स्वतंत्र नहीं हो सकता।"**** इस निष्कर्ष का राष्ट्रीय उत्पीड़न समेत हर तरह के उत्पीड़न के उन्मूलन के हेतु वर्गीय संघर्ष छेड़ने के लिए बहुत बड़ा महत्त्व रहा है।

मार्क्स और एंगेल्स राष्ट्रीय उत्पीड़न के उन्मूलन को बूर्जुआ वर्ग पर सर्वहारा की विजय और उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व के ख़ात्मे से संबद्ध मानते थे, यानी उनका सोचना था कि सर्वहारा क्रांति और समाजवाद की विजय ही राष्ट्रीय उत्पीड़न का अन्त करेंगी। उन्होंने कहा था:

"जितना ही एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण ख़त्म होगा, उतना ही एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण भी ख़त्म होगा।

---

* कार्ल मार्क्स: 'क़ानून के हेगेली दर्शन की आलोचना के बारे में'। भूमिका (१८४४)।

** वही।

*** फ़्रे० एंगेल्स: 'प्रवासी साहित्य' (१८७४–१८७५)।

**** कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स: 'पोलैण्ड के बारे में। पोलैण्ड के विद्रोह की १० वीं वर्षगांठ के अवसर पर लंदन में हुई अंतर्राष्ट्रीय सभा में भाषण' (२१ नवम्बर, १८४७)।

"राष्ट्र के अंदर वर्गीय विरोध का अन्त होने पर राष्ट्रों के बीच वैमनस्य के संबंधों का भी अन्त हो जायेगा।"*

मार्क्सवाद के प्रवर्तकों ने सर्वहारा के वर्ग संघर्ष में राष्ट्रीय प्रश्न के स्थान तथा भूमिका का सटीक और स्पष्ट निर्धारण किया। उन्होंने बताया कि सर्वहारा की रणनीति और राजनीति में राष्ट्रीय प्रश्न कोई स्वयंपूर्ण प्रश्न नहीं, बल्कि मुख्य प्रश्न – सर्वहारा अधिनायकत्व एवं कम्युनिज़्म के हेतु संघर्ष के प्रश्न – से जुड़ा हुआ और उसके मातहत है और इसलिए वह सर्वहारा के वर्ग संघर्ष, समाजवादी क्रांति तथा नये समाज के निर्माण के व्यापक प्रश्न का हिस्सा है।

उल्लेखनीय है कि मार्क्स और एंगेल्स द्वारा १८६४ में स्थापित पहले इण्टरनेशनल – अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ – ने अपने ध्वज पर यह नारा लिखा था: "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" राष्ट्रों की समानता और जनगण की मैत्री के लिए सारे विश्व के मज़दूरों द्वारा किये जानेवाले संघर्ष का यही उद्गम है और यही समाजवाद के हेतु मज़दूरों और अन्य मेहनतकशों के संघर्ष का भी स्रोत है।

साम्राज्यवाद के युग में राष्ट्रीय प्रश्नविषयक मार्क्सवादी विचारों का आगे विकास करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने राष्ट्रों के मूल, उनके जन्म की परिस्थितियों, उनके लक्षणों तथा सारतत्त्व, उनके भेदों, आदि से संबंधित प्रश्नों का गहन तथा सर्वांगीण अध्ययन किया। उन्होंने राष्ट्र और वर्ग, राष्ट्र और राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रवाद और अंधराष्ट्रवाद का उद्गम जैसे प्रश्नों की जांच भी की। लेनिन ने राष्ट्रीय प्रश्न से संबंधित एक सुस्पष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसे नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में मार्क्सवादी-लेनिनवादी निरन्तर विकसित और समृद्ध बनाते जा रहे हैं।

राष्ट्रों की उत्पत्ति संबंधी लेनिनीय सिद्धान्त की सारवस्तु क्या है?

व्ला० इ० लेनिन ने बताया था कि राष्ट्र और नस्ल, क़बीला या जाति एक ही चीज़ नहीं हैं। यदि नस्ल जीववैज्ञानिक प्रवर्ग है, जो बाह्य शारीरिक लक्षणों के आधार पर, बालों के रंग, कपाल तथा नाक के आकार, आंखों की आकृति, शरीर के अन्य अंगों की बनावट, आदि

---

*कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स: 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' (१८४८)।

के आधार पर लोगों के बीच अन्तर को द्योतित करता है, तो राष्ट्र एक सामाजिक तथा ऐतिहासिक प्रवर्ग है, जो सामाजिक विकास के एक निश्चित चरण में पैदा हुआ। क़बीला और जाति भी राष्ट्र के पर्याय नहीं हैं।

लोगों की समूहबद्धता का क़बीलाई रूप वर्गपूर्व, आदिम-सामुदायिक, गोत्रात्मक समाज में पाया जाता है। क़बीले और यहां तक कि जाति में भी वे लक्षण नहीं होते, जो राष्ट्र में होते हैं। इसके अलावा ज्ञात है कि एक ही नस्ल के लोग विभिन्न राष्ट्रिकताओं के हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यूरोपीय नस्ल के लोग अनेक यूरोपीय, एशियाई तथा अमरीकी राष्ट्रों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार किसी राष्ट्र का नस्ल की दृष्टि से एकरूप होना भी अनिवार्य नहीं है।

व्ला० इ० लेनिन ने राष्ट्रविषयक मूलभूत निष्कर्ष को सूत्रबद्ध करते हुए बताया था कि राष्ट्र सामाजिक विकास के पूंजीवादी युग की एक अनिवार्य उपज और उसका एक अनिवार्य रूप है।* उन्होंने कहा था कि राष्ट्र उभरते हुए पूंजीवाद के युग में ही पैदा होते हैं।

राष्ट्र पूंजीवाद से पहले की सामाजिक व्यवस्थाओं में क्यों पैदा नहीं हो सके? इस प्रश्न का संक्षेप में उत्तर यों दिया जा सकता है: पूंजीवाद से पहले की व्यवस्थाओं में राष्ट्र के रूप में लोगों के समूहबद्ध होने के लिए, सबसे पहले, सामाजिक-आर्थिक आधार न तो था और न हो ही सकता था। उनमें आर्थिक ऐक्य नहीं था, जिसकी वजह से विभिन्न क़बीलों और जातियों के अंदर स्थायी संबंध नहीं थे।

अतः राष्ट्र सामन्तवाद पर पूंजीवाद की विजय की उपज और परिणाम है।

व्ला० इ० लेनिन साझी भाषा, साझा क्षेत्र और साझा आर्थिक जीवन जैसे ऐतिहासिक लक्षणों को राष्ट्र का अनिवार्य लक्षण मानते थे।**

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'कार्ल मार्क्स। मार्क्सवाद की व्याख्या सहित एक संक्षिप्त जीवनी' (१९१५)।

**व्ला० इ० लेनिन: "'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?" (१८९४); 'अर्थशास्त्रीय रोमांटिज़्म के बारे में। सिस्मोंदी और स्वदेशी सिस्मोंदीवादी' (१८९७); 'रूस में पूंजीवाद का विकास' (१८९९); 'पार्टी में बुन्द की स्थिति' (१९०३); 'राष्ट्रीय प्रश्न विषयक निबंध की प्रस्थापनाएं' (१९१४); 'राष्ट्रीय प्रश्न विषयक निबंध के लिए सामग्री' (१९१४)।

पूंजीवाद से पहले की व्यवस्थाओं में ये लक्षण केवल भ्रूणावस्था में थे। वे उभरकर सामने तभी आये, जब पूंजीवाद और उसके साथ-साथ राष्ट्रीय मंडी और आर्थिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र विकास करने लगे।

राष्ट्र के लक्षण ये ही क्यों हैं और जैविक, नस्ली, धार्मिक, इत्यादि लक्षण क्यों नहीं हैं?

साझी भाषा से शुरू करें। ज्ञात है कि भाषा मनुष्यों के लिए आपस में संपर्क स्थापित करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। वह साथ ही राष्ट्र का दीर्घजीवी लक्षण भी है।

भाषायी एकता समूहबद्धता के पूंजीवाद से पहले के रूपों का लक्षण भी थी। किन्तु तब साझी भाषा के जन्म के साथ-साथ, जिसे कई क़बीले या जातियां इस्तेमाल करती थीं, स्थानीय बोलियों और भाषाओं का प्रचलन भी पाया जाता था और ऐसी हर स्थानीय बोली या भाषा को कोई एक क़बीला या क़बीलाई समूह ही समझ पाता था।

कई बार हम विभिन्न राष्ट्रों को एक ही भाषा बोलता हुआ पाते हैं। यह बात विशेषत: अंग्रेज़ी, फ़्रांसीसी, स्पेनी, जर्मन और पुर्तगाली भाषाओं पर लागू होती है। अधिकांश लैटिन अमरीकी देशों में स्पेनी बोली जाती है। मगर क्यूबाई, मेक्सिकी, पेरूई उसी तरह अलग-अलग राष्ट्रों के लोग हैं, जैसे कि अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग करनेवाले आस्ट्रेलियाई, अमरीकी या अंग्रेज़ लोग।

कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं, जब एक ही राष्ट्र के लोग विभिन्न भाषाएं बोलते हैं, मिसाल के लिए मोर्दवा, यहूदी, इत्यादि। साहित्य में इन्हें बहुभाषायी राष्ट्र कहते हैं।

किन्तु ये तथ्य भी इस बात का खण्डन नहीं करते कि साझी भाषा राष्ट्र का एक मुख्य लक्षण है। ध्यान देने योग्य है कि उन मामलों में भी, जब एक ही भाषा विभिन्न राष्ट्रों द्वारा इस्तेमाल की जाती है, स्वयं भाषा में परिवर्तन आते रहते हैं। इसका एक ज्वलंत उदाहरण लैटिन अमरीका में बोली जानेवाली स्पेनी और पुर्तगाली भाषाएं हैं।

इस तरह कहा जा सकता है कि जहां, एक ओर, साझी भाषा राष्ट्र की लाक्षणिक विशेषता है, वहां, दूसरी ओर, विभिन्न राष्ट्रों द्वारा विभिन्न भाषाएं बोला जाना अनिवार्य नहीं है।

राष्ट्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण **साझा क्षेत्र** है। साझे क्षेत्र का अर्थ है भौगोलिक एकता, एक प्रशासन और साझा क्षेत्र के विभिन्न भागों के बीच संचार साधनों की विद्यमानता। एक ही क्षेत्र पर पीढ़ी दर पीढ़ी संयुक्त जीवन बिताने के परिणामस्वरूप ही राष्ट्र पैदा होता है। क्षेत्रीय एकता भंग होने से राष्ट्रीय एकता भंग होती है। अंग्रेज और अमरीकी राष्ट्रों के ऐतिहासिक अनुभव से पता चलता है कि राज्य सीमाओं और भौगोलिक बाधाओं (सागरों और महासागरों) द्वारा एक दूसरे से विभक्त ये समजाति समूह साझी भाषा और घनिष्ठ आर्थिक संपर्कों की विद्यमानता के बावजूद कभी एक राष्ट्र में विलयित नहीं हो सकते। क्षेत्रसंबंधी अन्तर ने उन्हें विभिन्न राष्ट्र बना दिया है।

किन्तु साझा क्षेत्र ही स्वतः राष्ट्र को जन्म नहीं दे देता। एक ही क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्रों के लोग रह सकते हैं और रहते भी हैं। इसका एक उदाहरण सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ (सोवियत संघ) है, जो बहुराष्ट्रिक राज्य है और जिसमें बहुत से राष्ट्र तथा जातियां रहती हैं।

राष्ट्र के जन्म की एक शर्त और राष्ट्र का तीसरा अनिवार्य लक्षण **साझा आर्थिक जीवन** है। कोई भी जाति राष्ट्र मुख्यतः तभी बनती है, जब उद्योग का विकास होता है और कृषि तथा उद्योग के बीच मालविनिमय की सुचारु व्यवस्था की जाती है। सामन्तवादी समाज के गर्भ में शनैः शनैः उत्पादक शक्तियां और पूंजीवादी उत्पादन संबंध विकास करते हैं। छोटे पैमाने के उत्पादन के मुकाबले में, जो उत्पादकों को एक दूसरे से बहुत ही अलग-थलग, विभाजित और पिछड़ा हुआ बनाये रखता है, बड़े पैमाने का उत्पादन मध्ययुगीन अवरोधों को दूर करता है और स्थानीय, इलाकाई और पेशेसंबंधी अन्तरों को मिटाता है।

राष्ट्र के आविर्भाव के लिए विश्वव्यापी मंडी और विश्व अर्थव्यवस्था का होना भी ज़रूरी है।

राष्ट्र का एक लक्षण और है। वह है राष्ट्र के रूप में समूहबद्ध **लोगों की अपनी आत्मिक विशिष्टताएं**, यानी अपना विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय भावनाएं, राष्ट्रीय स्वभाव, राष्ट्रीय संस्कृति, आदि। ये सब लोगों के भौतिक तथा आत्मिक जीवन के दीर्घकालीन ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में पैदा होते हैं और कुछ निश्चित सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप बनते हैं।

राष्ट्रीय भावनाओं के प्रश्न की कुछ विस्तार से चर्चा करें, जो राष्ट्र की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक बनावट का एक तत्त्व हैं। ये भावनाएं मातृभूमि, राष्ट्रीय इतिहास की घटनाओं, परंपराओं, सांस्कृतिक थाती, आदि के प्रसंग में प्रकट होती हैं। इसलिए किसी भी राष्ट्र की आत्मिक विशिष्टताओं की सर्वाधिक ज्वलंत अभिव्यक्ति उसकी राष्ट्रीय संस्कृति की विशेषताओं, उसके साहित्य, कला तथा संगीत, लोककथाओं और लोकगीतों, लोककाव्यों के नायकों के चरित्र, इत्यादि में पायी जाती है। राष्ट्रीय भावनाएं अपेक्षया दीर्घजीवी होती हैं।

यह याद रखना ज़रूरी है कि पूंजीवाद में राष्ट्र के सभी वर्गों तथा तबक़ों की आत्मिक बनावट एक जैसी नहीं होती। मज़दूर वर्ग की आत्मिक विशिष्टताएं एक होती हैं और बूर्जुआ वर्ग की दूसरी। मज़दूर वर्ग की परंपराएं भी दूसरी होती हैं। वह शोषण और शोषकों से घृणा करता है और पूंजीवादी व्यवस्था से लगातार जूझता रहता है। अतः कहा जा सकता है कि हर पूंजीवादी देश में वस्तुतः दो राष्ट्रीय संस्कृतियां होती हैं बूर्जुआ वर्ग की संस्कृति (प्रतिक्रियावादी संस्कृति) और सर्वहारा तथा क्रांतिकारी-जनवादी शक्तियों की संस्कृति (प्रगतिशील संस्कृति)।

राष्ट्र के सारतत्त्व के निरूपण में परंपराओं को भी स्थान दिया जाता है।

दीर्घजीवी राष्ट्रीय परंपराओं को ही मुख्यतः ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न का विवेचन करें। मार्क्सवादी विचारक अतीत की उन प्रगतिशील परंपराओं को दीर्घजीवी राष्ट्रीय परंपराएं मानते हैं, जो किसी ख़ास सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की परिस्थितियों में पैदा और विकसित हुईं और इन परिस्थितियों के आमूल बदल जाने के बाद भी जीवित रहती हैं। प्रगतिशील राष्ट्रीय परंपराएं लोगों की समूहबद्धता को सुदृढ़ बनाती हैं।

परंपराओं का संबंध सामाजिक और मानसिक कार्यकलाप के विभिन्न क्षेत्रों से है। ऐसा एक चिरन्तन क्षेत्र, जिसमें परंपराएं सुरक्षित रहती और समृद्ध बनती हैं, मुक्ति संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन है। इसके प्रचुर उदाहरण जर्मन फ़ासिज़्म के विरुद्ध सोवियत जनता के १९४१–१९४५ के महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में पाये जा सकते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी, १८१२ के देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वीरों की कथाओं, १९१८–१९२० के गृहयुद्ध के काल के सैनिक कारनामों, आदि ने इस फ़ासिज़्मविरोधी मुक्ति संग्राम के वीरों को अद्भुत पराक्रम दिखाने के लिए प्रेरित किया था।

राष्ट्रीय परंपराएं कला और सामान्य जीवन में भी प्रकट होती हैं। हर राष्ट्र के गीत, नृत्य, हस्तशिल्प, आदि राष्ट्रीय परंपरा की छाप लिये होते हैं।

राष्ट्रीय परंपराएं समाज की प्रगति में वस्तुतः सहायक तभी होती हैं, जब नयी-नयी उपलब्धियों से उनका संवर्धन तथा पोषण किया जाता है, क्योंकि हर राष्ट्र अपने वर्तमान तथा भविष्य की ख़ातिर ही अतीत का सहारा लेता है।

हर राष्ट्र का अपना राष्ट्रीय चरित्र होता है। उदाहरणस्वरूप रूसी जनता के राष्ट्रीय चरित्र को ही ले सकते हैं। उसके क्रांतिकारी उत्साह, आत्मत्याग, लक्ष्योन्मुखता, दृढ़ता, मेहनतपसंदगी और प्रगाढ़ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद ने, जिनकी उसके सारे इतिहास पर गहन छाप पड़ी है, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव लेओनीद ब्रेज्नेव के शब्दों में, "उसे हमारी समाजवादी मातृभूमि के समस्त जनगण का श्रद्धापात्र ठीक ही बनाया है"।*

राष्ट्र के लक्षणों का काम करनेवाले सभी तत्त्वों के बीच आपस में संबंध होता है और वे एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। किन्तु फिर भी उनमें निर्णायक भूमिका साझे आर्थिक जीवन की ही होती है। जहां साझा आर्थिक जीवन है, वहीं अन्य साझे तत्त्वों का अस्तित्व भी संभव है। आर्थिक जीवन का साझापन राष्ट्र के अन्य लक्षणों – भाषा और क्षेत्र – को एक सूत्र में पिरोता है। कार्ल मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने भी कहा था कि एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में बोलियों का संकेन्द्रण सबसे पहले "आर्थिक और राजनीतिक संकेन्द्रण" की वजह से होता है।** इसकी पुष्टि के लिए एक उदाहरण दें।

एक जाति की भाषा के रूप में किर्गिज़ भाषा १५–१६ वीं सदियों में अस्तित्व में आयी। किन्तु बाद में किर्गिज़ों के दीर्घकालीन आर्थिक तथा क्षेत्रीय बिखराव के कारण उसकी विभिन्न बोलियों में अन्तर बढ़ता गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि दो उपभाषाएं प्रकट हो गयीं – उत्तरी किर्गिज़

---

*सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस में भाषण (१६७१)।

**कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स: 'जर्मन विचारधारा' (१८४५–१८४६)।

ग्रौर दक्षिणी किर्गिज़। यह प्रवृत्ति समूची किर्गिज़ भाषा के ह्रास का कारण बन सकती थी। किन्तु यदि ऐसा नहीं हुग्रा, तो इसका श्रेय ग्रक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय को है, जिसने किर्गिज़ों को ग्रार्थिक तथा क्षेत्रीय दृष्टि से एकजुट बनाया ग्रौर किर्गिज़ समाजवादी राष्ट्र को जन्म दिया।

यदि जाति के लिए साझा क्षेत्र सर्वाधिक महत्त्व रखता है, तो राष्ट्र के लिए प्राथमिक महत्त्व साझे ग्रार्थिक जीवन का है। इसीलिए जहां साझा ग्रार्थिक जीवन नहीं है ग्रौर फलस्वरूप राष्ट्रीय सर्वहारा नहीं पैदा हुग्रा है, वहां राष्ट्र के ग्राविर्भाव की बात करना बेकार है।

राष्ट्र में उपर्युक्त सभी लक्षणों का होना ग्रनिवार्य है। इसीलिए हम कहते हैं कि राष्ट्र जैविक, नस्ली या क़बीलाई समूह नहीं, **बल्कि उसके सभी लक्षणों, उनकी समष्टि के ग्राधार पर ऐतिहासिकतः बना दीर्घजीवी समुदाय है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्र लोगों की समूहबद्धता का ऐसा रूप है, जो उनके साझे ग्रार्थिक जीवन, साझे क्षेत्र, साझी भाषा ग्रौर साझी ग्रात्मिक विशिष्टताग्रों में व्यक्त होता है।** ये ही लक्षण एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से ग्रौर इसी तरह समूहबद्धता के राष्ट्र से पहले के नृजातीय रूपों से भेद करने की संभावना देते हैं।

ग्रन्य नृजातीय समूह-रूपों (क़बीला, जाति) से राष्ट्र ग्रपने गुणात्मक लक्षणों की वजह से ही नहीं, ग्रपितु ग्रपने परिमाणात्मक लक्षणों की वजह से भी भिन्न होता है। सामान्यतः राष्ट्र लोगों का बड़ा समूह होता है। किन्तु विभिन्न राष्ट्रों के ग्राकारों में ग्रन्तर हो सकता है – कोई राष्ट्र करोड़ों लोगों का समूह होगा ग्रौर कोई कुछ लाख लोगों का ही।

उदाहरण के लिए सोवियत संघ में रहनेवाले राष्ट्रों या राष्ट्रीय इकाइयों का ही उदाहरण लें। इनमें से २२ ऐसे हैं, जिसमें से प्रत्येक की ग्राबादी १० लाख से ग्रधिक है। तीन राष्ट्र ऐसे हैं, जिनमें से प्रत्येक की ग्राबादी ५ लाख से १० लाख के बीच है। फिर २७ राष्ट्र ऐसे हैं, जिन में से प्रत्येक की ग्राबादी केवल १ लाख ग्रौर ५ लाख के बीच है। इस तरह यदि रूसी राष्ट्र की वर्तमान ग्राबादी १३ करोड़ है, तो एस्तोनियाई राष्ट्र की ग्राबादी १० लाख से कुछ ही ग्रधिक है।

सोवियत संघ में जातियों की संख्या राष्ट्रों की संख्या से ग्रधिक है, मगर फिर भी देश की कुल ग्राबादी में इन सभी जातियों की ग्राबादी का ग्रनुपात

लगभग नगण्य ही है। उदाहरण के लिए दाग़िस्तान स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र में १० जातियां रहती हैं, जैसे अवार, लेज़गी, दरर्गी, कुमीक, लाक, तबासरान, नोगाई, रुतूल, त्साखूर और आगूल। मगर उनमें से कुछ की, जैसे त्साखूरों की कुल आबादी ११ हज़ार तक और आगूलों की आबादी कुल ८ हज़ार ८ सौ ही है।

सभी देशों में राष्ट्रों के गठन की प्रक्रिया एक ही तरह घटित नहीं हुई है। उदाहरण के रूप में हम पश्चिमी और पूर्वी यूरोप के देशों को ले सकते हैं।

पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रों और केन्द्रीकृत राज्यों का गठन लगभग एक साथ हुआ। ये दोनों प्रक्रियाएं सामन्तवाद के विघटन और पूंजीवाद की स्थापना के काल में, यानी कोई १८वीं सदी के अन्त से १९वीं सदी के आठवें दशक के बीच घटीं। इस काल के अन्त तक पश्चिमी यूरोप के देश पूर्णतः गठित पूंजीवादी राज्यों में परिवर्तित हो चुके थे। अधिकांशतः ये राष्ट्रीय दृष्टि से एकीभूत राज्य थे, जैसे इंग्लैण्ड, फ़्रांस, इटली, आदि। संयुक्त राज्य अमरीका और जापान का राष्ट्रीय विकास भी बहुत कुछ ऐसे ही ढंग से हुआ।

किन्तु पूर्वी यूरोप के देशों में दूसरी ही तस्वीर सामने आती है। रूस, आस्ट्रिया, हंगरी, तथा कुछ अन्य देशों में केन्द्रीकृत राज्यों का गठन सामन्तवाद के उन्मूलन और राष्ट्रों के आविर्भाव से काफ़ी पहले हो चुका था। इन देशों में केन्द्रीकृत राज्यों का निर्माण बाह्य ख़तरों और हमलों का परिणाम था। अतः वे एकराष्ट्रिक नहीं, अपितु बहुराष्ट्रिक राज्य बने। शोषणाधारित व्यवस्था की परिस्थितियों में बहुराष्ट्रिक राज्यों में सदा कुछ राष्ट्र प्रभुत्वसंपन्न राष्ट्रों की हैसियत रखते हैं और कुछ कमज़ोर, मातहत राष्ट्रों की हैसियत।

राष्ट्र की मार्क्सवादी-लेनिनवादी परिभाषा से ऐसे बहुत से विद्वानों को भी सहमत होना पड़ा है, जो अन्यथा वैज्ञानिक कम्युनिज़्म से बहुत भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। अपने कम्युनिज़्मविरोध के बावजूद कतिपय "सोवियतवेत्ता" और "क्रेमलिनवेत्ता" इस परिभाषा की सत्यता को–बेशक कुछ शर्तों के साथ–स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध अमरीकी राजनीतिविज्ञानवेत्ता प्रो० फ़्रेडरिक बोर्गहोर्न कहते हैं कि यह (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) परिभाषा पश्चिम में स्वीकृत परिभाषाओं से

कोई ख़ास भिन्न नहीं है।* एक अन्य विद्वान, "कम्युनिज़्मविशेषज्ञ" प्रो० एल्फ़्रेड लो का कहना है कि राष्ट्र की मार्क्सवादी अवधारणा राष्ट्र के पूंजीवादी सिद्धान्तों से इसी अर्थ में भिन्न है कि मार्क्सवादी अवधारणा राष्ट्र के अस्थायी, परिवर्तनशील स्वरूप पर बल देती है।**

राष्ट्र की मार्क्सवादी-लेनिनवादी परिभाषा इस प्रश्न से संबंधित प्रत्ययवादी और अन्य विज्ञानविरोधी मान्यताओं की अयुक्तियुक्तता को सिद्ध करती है। वास्तव में वह राष्ट्र संबंधी विभिन्न बूर्जुआ अवैज्ञानिक सिद्धांन्तों के सर्वथा विपरीत है।

कतिपय पूंजीवादी सिद्धान्तकार तथाकथित राष्ट्र के नस्ली सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए राष्ट्र को नस्ल का समतुल्य बनाते हैं। उनके मत में विश्व में ऊंची और नीची नस्लें, मालिक नस्लें और दास नस्लें, शुद्ध और अशुद्ध नस्लें पायी जाती हैं। वे इस बात को मानकर चलते हैं कि प्रकृति ने ही लोगों को असमान बनाया है। कहना न होगा कि ऐसा विचार प्रतिपादित करने का लक्ष्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को, शोषणाधारित व्यवस्था को चिरस्थायी बनाना है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद ऐसे दृष्टिकोणों की हानिकरता और प्रतिगामिता का पर्दाफ़ाश करता है।

नस्लें मानव इतिहास के उषाकाल में ही प्रकट हो गयी थीं और विभिन्न भौगोलिक तथा जलवायु परिस्थितियों में विभिन्न मानव समूहों के दीर्घकाल तक पृथक्-पृथक् रहने का परिणाम थीं। तब से लोग बारंबार बड़े पैमाने पर स्थानपरिवर्तन करते रहे, जिसके फलस्वरूप अनेक नस्लों के बीच अनेक बार आपस में मिश्रण हुआ। पूंजीवादी समाज में यदि अश्वेत लोग शोषितावस्था में हैं, तो इसका कारण स्वयं पूंजीवादी व्यवस्था की असलियत है, न कि उनकी त्वचा का रंग।

आधुनिक पूंजीवादी साहित्य में राष्ट्र की कुछ ऐसी परिभाषाएं भी मिलती हैं, जो राष्ट्र के किसी एक तत्त्व या लक्षण को ही आधार बनाती हैं। उदाहरण के लिए, पूंजीवादी हल्क़ों में विशेषरूप से प्रतिष्ठाप्राप्त अमरीकी समाजशास्त्री हांस कोहन यह मानने के बावजूद कि राष्ट्र को

---

* F.C. Borghorn, *Soviet Russian Nationalism*, New York, 1956, p.21

** A.D. Low, *Lenin on the Question of the Nationalities*, New York, 1958, p. 30

ठीक-ठीक परिभाषित नहीं किया जा सकता, राष्ट्र का निर्णायक लक्षण "राष्ट्रीय संकल्प" की एकता या, जैसा कि वह लिखते हैं, "सक्रिय साझे संकल्प" और "राष्ट्रीय लक्ष्य" को ही बताते हैं।* कुछ विद्वानों के मत में ऐसा निर्णायक लक्षण राष्ट्रीय चरित्र है।

कोहन की भांति ब्रिटिश समाजशास्त्री एच० स्टेनहार्ड ने भी लक्ष्य को आधारभूत लक्षण मानकर राष्ट्र को परिभाषित किया है। वह लिखते हैं, "लक्ष्य ही राष्ट्र का आदि और अन्त है।"**

निस्संदेह, हर राष्ट्र किसी निश्चित संकल्प (जैसे आत्मनिर्णय का संकल्प) का वाहक होता है। किन्तु इसी से यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि संकल्प या "राष्ट्रीय लक्ष्य" राष्ट्र का मूलभूत लक्षण है।

कुछ विद्वानों के मत में नियति राष्ट्र का लक्षण है। उदाहरण के लिए, अमरीकी समाजशास्त्री आर० एमर्सन लिखते हैं कि राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह है, "जो साझे ऐतिहासिक अतीत, और समान नियति में विश्वास के कारण एकजुट बने हैं।"*** किन्तु पूछा जा सकता है: अमरीकी अरबपति राकफ़ेलर की नियति और एक ग़रीब अमरीकी मेहनतकश की नियति में समान क्या है?

कहना न होगा कि मनोवैज्ञानिक तत्त्वों (लक्ष्य, संकल्प, नियति, आदि) को राष्ट्र के सिद्धान्त का मूलाधार बतानेवाले विद्वान मेहनतकशों से मानो यह कहना चाहते हैं कि राष्ट्रीय विरोधों को ख़त्म करने के लिए सामाजिक जीवन को नहीं, बल्कि मनुष्य के भावात्मक विश्व को ही बदलने की ज़रूरत है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि राष्ट्रों के बीच वैमनस्यपूर्ण संबंध अपरिहार्य हैं और राष्ट्रों का आपसी मनमुटाव उनकी प्रकृति, उनकी उत्पत्ति के इतिहास का ही अंग है।

"एक मुस्लिम राष्ट्र" का प्रचार करनेवाले कतिपय इस्लामी विचारक धर्म को ही राष्ट्र का एकमात्र लक्षण बताते हैं।

जनजीवन के किसी एक ही साझे तत्त्व को राष्ट्र का लक्षण बतानेवाली राष्ट्र की परिभाषाएं ग़लत क्यों हैं?

---

*Hans Kohn, *The Idea of Nationalism*, New York, 1946, p. 13, 15.
**H. Stenhard, *What is a Nation?*, London, 1945, p. 56.
***R. Emerson, *From Empire to Nation*, Cambridge, 1960, p. 95.

वे मुख्यत: इसलिए ग़लत हैं कि उनमें ऐतिहासिक ग्रौर ग्रार्थिक कारकों की उपेक्षा की जाती है ग्रौर राष्ट्र की उत्पत्ति को नये सामाजिक संबंधों के विकास से जुड़ा हुग्रा नहीं माना जाता। चूंकि वे इस तथ्य को ग्रनदेखा करती हैं कि राष्ट्र की उत्पत्ति एक निश्चित युग में ही हो सकती है, इसलिए वे राष्ट्र ग्रौर जाति, राष्ट्र ग्रौर समूहबद्धता के ग्रन्य रूपों के बीच ग्रन्तर को नहीं देख पातीं।

इसके ग्रलावा राष्ट्र के कुछ एक लक्षण, जिनमें "संकल्प", "लक्ष्य" ग्रौर "धर्म" भी शामिल हैं, तब भी पाये जाते थे, जब लोग राष्ट्र के रूप में संगठित नहीं हुए थे। मिसाल के लिए, ज्ञात है कि एक ही राष्ट्र के लोग विभिन्न धर्मों के ग्रनुयायी हो सकते हैं ग्रौर प्राय: होते भी हैं।

ग्रमरीकी दार्शनिक ग्रौर विधिवेत्ता प्रो० एफ० नोथ्रॉप राष्ट्र को यों परिभाषित करते हैं: "राष्ट्र ऐसा समाज है, जो एक इकाई की तरह क्रिया करता है।" वह ग्रपने दृष्टिकोण को राष्ट्रीय एकता के प्रश्न की ग़लत व्याख्या पर ग्राधारित करते हैं: "चाहे कुछ एक साझे नियमों के संबंध में ही क्यों न सही, यदि समाज के सभी सदस्य एकमत नहीं हैं, तो समाज एक राष्ट्रीय इकाई की तरह क्रिया नहीं कर सकता।"*

इस तरह प्रो० नोथ्रॉप मानो कहना चाहते हैं कि विरोधपूर्ण वर्गीय समाज में सभी साझे नियमों के बारे में सबके बीच पूर्ण ऐक्यमत होता है ग्रौर यहां मेहनतकशों के पूंजीवादी व्यवस्था से ग्रसंतुष्ट होने के लिए कोई ग्राधार नहीं है।

राष्ट्र की ऐसी परिभाषा का उद्देश्य श्रम ग्रौर पूंजी, मज़दूरों ग्रौर शोषकों के बीच मौजूद ग्रसाध्य विरोधों पर परदा डालना है। ऐसी परिभाषा वर्गीय शांति का प्रचार करती है ग्रौर वास्तव में मेहनतकशों के शोषण को चिरस्थायी बनाती है।

कतिपय पूंजीवादी समाजशास्त्री राष्ट्र के बारे में लेनिन के विचारों को तोड़ने-मरोड़ने तथा ग़लत ढंग से पेश करने की कोशिशें करते हैं। जो बातें लेनिन कभी नहीं कह सकते थे, वे उन्हें भी उनके मत्थे मढ़ते हैं।

---

* F. Northrop, *The Taming of the Nations*, New York, 1954, p. 3.

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के इतिहास का अध्ययन करनेवाले अमरीकी "विशेषज्ञ" ए० मायर अपनी पुस्तक "लेनिनिज़्म" के "नेशनलिज़्म" शीर्षक अध्याय में, जिसमें राष्ट्र संबंधी लेनिनीय दृष्टिकोणों की चर्चा की गयी है, कहते हैं कि लेनिन के मत में राष्ट्र सामन्तवादी या प्राग्-पूंजीवादी अतीत की उपज है।* इस तरह लेनिन को यह कहता हुआ दिखाया जाता है कि मानो राष्ट्रों का जन्म पूंजीवाद से पहले ही हो गया था।

मगर वास्तविकता बिल्कुल भिन्न है। व्ला० इ० लेनिन ने अकाट्य रूप से प्रमाणित किया था कि राष्ट्र सामन्तवाद के ह्रास और पूंजीवाद के जन्म का फल है और साझा क्षेत्र, साझा आर्थिक जीवन जैसे राष्ट्र के लक्षणों का आविर्भाव पूंजीवाद के विकास से ही जुड़ा हुआ है।**

कुछ समाजशास्त्री ऐसे भी हैं, जो आधुनिक विश्व में राष्ट्रों की विद्यमानता से ही इन्कार करते हैं। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के प्रो० एम० सीवैल की धारणा है कि "राष्ट्र को कभी किसी ने नहीं देखा है, न ही कभी किसी ने उसे छुआ है। भौतिक विश्व में राष्ट्र नाम की कोई वस्तु नहीं है। उसका अस्तित्व मात्र कुछ लोगों की कल्पना में है।"*** मेक्सिकी समाजशास्त्री के० ए० एचानोवे तुहिल्यो भी मानो सीवैल की हां में हां मिलाते हुए कहते हैं कि "मेक्सिकी लोग राष्ट्र नहीं हैं।" यदि इन विद्वानों के तर्क का अनुगमन किया जाये, तो विश्व में जितने भी राष्ट्रों का अस्तित्व माना जाता है, उन सबका नाम ही मिटा देना होगा। मगर वास्तविकता ऐसे "सिद्धान्तों" के विरुद्ध है।

फिर कुछ ऐसे तथाकथित विद्वान भी हैं, जो अल्पविकसित देशों और उपनिवेशों के जनगण को राष्ट्र नहीं मानते। कहना न होगा कि इसका उद्देश्य इन जनगण के शाश्वत शोषण तथा उत्पीड़न की सैद्धान्तिक सफ़ाई देना और मालिकों तथा दासों में लोगों के विभाजन को वैध ठहराना है।

पिछले कुछ समय से कतिपय बूर्जुआ "सिद्धान्तकार" अपने विचारों की पुष्टि के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रवर्तकों को प्रमाण के तौर पर

---

*A. Mayer, *Leninism*, Cambridge, 1957, p. 145.

** व्ला० इ० लेनिन : '"जनता के मित्र" क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?' (१८९४)।

****The American Historical Review*, New York, 1962, vol. XII, No 4, pp. 901-902.

पेश करने लगे हैं। मिसाल के लिए, आर० किंग का दावा है कि मार्क्स ने "कहा था कि क्रांति के बाद राष्ट्र का अस्तित्व नहीं रहेगा।"* मगर सभी जानते हैं कि यह मार्क्स ने ही कहा था कि क्रांति "राष्ट्र की रक्षा की अनिवार्य शर्त है।"**

राष्ट्र की पूंजीवादी परिभाषा का आम सैद्धान्तिक तथा कार्यविधिक आधार राष्ट्रीय प्रश्न के प्रति अवैज्ञानिक और अयथार्थपरक दृष्टिकोण है। तथाकथित "राष्ट्रीय चरित्र" का उदाहरण लेकर इस निष्कर्ष को अकाट्य रूप से सिद्ध किया जा सकता है।

शोषक वर्गों के सिद्धान्तकार "विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र" के प्रश्न को जिस तरह पेश करते हैं, उसके पीछे उनका उद्देश्य यही होता है कि कुछ जनगण को अन्यों के मुक़ाबले में खड़ा किया जाये और नस्ली तथा अंधराष्ट्रवादी अवधारणाओं को उचित ठहराया जाये। साम्राज्यवादियों तथा उपनिवेशवादियों को पूर्व के लोगों के "चरित्र" तथा पश्चिम के लोगों के "चरित्र" को एक दूसरे के मुक़ाबले में रखने की आवश्यकता अपनी इस प्रस्थापना को सिद्ध करने के लिए पड़ती है कि मानो पूर्व के लोगों के चरित्र में कुछ शाश्वत दोष पाये जाते हैं, जिसकी वजह से उन्हें समानाधिकारप्राप्त और पूर्ण विकसित नहीं माना जा सकता। यह उन्हें यह सिद्ध करने के लिए भी चाहिये कि ऐसे "विशिष्ट चरित्र" के कारण ही पूर्व के लोग अपने राष्ट्रीय राज्य और संस्कृति का विकास नहीं कर सकते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय चरित्र संबंधी प्रश्न को विज्ञानविरोधी ढंग से पेश करने के फलस्वरूप राष्ट्रों को एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा किया जाता है, मेहनतकश जनसामान्य की वर्गीय चेतना को उभरने नहीं दिया जाता और दास राष्ट्रों तथा मालिक राष्ट्रों के अस्तित्वविषयक प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोणों का प्रचार किया जाता है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद राष्ट्रीय चरित्रसंबंधी प्रश्न का समाधान कैसे करता है? निस्संदेह, वह राष्ट्रीय चरित्र की मौजूदगी से इन्कार नहीं करता। किन्तु प्रत्ययवाद के विपरीत मार्क्सवाद-लेनिनवाद उसे जनगण के

---

*R. King, *Minorities under Communism*, Cambridge, Mass., 1973, p. 16.

** कार्ल मार्क्स : 'फ़्रांस में गृह-युद्ध की एक संक्षिप्त रूपरेखा' (१८७१)।

पूरे इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ और राष्ट्र की आम विशिष्टताओं का ही एक अंग मानता है और उसके आधार पर एक जन को दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा नहीं करता। मार्क्सवाद-लेनिनवाद इस सारे प्रश्न को इस ढंग से पेश करता है कि हर जन की राष्ट्रीय तथा प्रगतिशील विशेषताओं को उजागर किया जाये, ताकि उनसे अन्य जनगण भी लाभान्वित हो सकें।

साथ ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद सामाजिक विकास में राष्ट्र की भूमिका को न तो बढ़ा-चढ़ाकर और न कम करके ही आंकता है।

२. राष्ट्रों के भेद

मार्क्सवादी विज्ञान के अनुसार राष्ट्र दो प्रकार के होते हैं–पूंजीवादी राष्ट्र और समाजवादी राष्ट्र। किन्तु कुछ विद्वान संक्रामी राष्ट्रों के अस्तित्व की बात भी करते हैं। बूर्जुआ समाज में जो राष्ट्र बनते और रहते हैं, वे पूंजीवादी राष्ट्र हैं।

पहले साहित्य में पूंजीवादयुगीन राष्ट्रों को बूर्जुआ राष्ट्र कहा जाता था। किन्तु यह संज्ञा उदीयमान पूंजीवाद के काल के प्रसंग में ही ठीक है। कुछ हद तक उसे पूंजीवाद के विकास की साम्राज्यवादी अवस्था के आरंभकाल के प्रसंग में भी प्रयोग किया जा सकता है, जब "अखिल राष्ट्रीय लक्ष्य" हो सकते थे और राष्ट्र के अंदर एक ओर सर्वहारा तथा सभी मेहनतकशों और दूसरी ओर साम्राज्यवादी बूर्जुआ वर्ग के बीच स्पष्ट सीमारेखा नहीं बनी थी।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय और विश्व समाजवादी प्रणाली की स्थापना के बाद आये गंभीर सामाजिक परिवर्तनों के प्रभावस्वरूप पूंजीवाद की परिस्थितियों में रहनेवाले राष्ट्रों के आन्तरिक जीवन में भी आमूल परिवर्तन आये। राष्ट्र के विकास में बूर्जुआ वर्ग की अग्रणी भूमिका में शिथिलता आयी और सर्वहारा की भूमिका बढ़ी। इन परिस्थितियों में विभिन्न राष्ट्रों के लोगों के वर्गीय अन्तर राष्ट्रीय साझेपन से अधिक महत्त्वपूर्ण बन गये।

इसके अलावा इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि राष्ट्रों के भेद-निर्धारण में मार्क्सवाद-लेनिनवाद उत्पादन रीति के विकास के चरण जैसी वैज्ञानिक कसौटी से निदेशित होता है।

चूंकि राष्ट्र अन्ततः पूंजीवादी उत्पादन रीति का विकास होने पर ही बनते हैं, इसलिए उनका गठन भी पूंजीवादी राष्ट्र के तौर पर ही होता है। सामाजिक विषमांगता और वर्ग विरोध इन राष्ट्रों की लाक्षणिक विशेषता है, जो उनके आर्थिक तथा आत्मिक जीवन, संस्कृति और परंपराओं में सर्वाधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त होती है।

व्ला० इ० लेनिन ने बल देते हुए कहा था कि हर आधुनिक राष्ट्र के भीतर दो राष्ट्र और हर संस्कृति के भीतर दो राष्ट्रीय संस्कृतियां होती हैं।* रूसी संस्कृति का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि एक ओर तो उसमें प्रतिक्रियावादियों की संस्कृति पायी जाती है, जिसका प्रतिनिधित्व पुरिश्केविच तथा गुच्कोव जैसे महागुण्डे और स्त्रूवे जैसे लोग करते हैं, जो बूर्जुआओं के शिविर में जा भागे हैं। किन्तु दूसरी ओर उसमें हम प्रगतिशील संस्कृति भी पाते हैं, जिसके प्रतिनिधि क्रांतिकारी जनवादी, भौतिकवादी दार्शनिक तथा लेखक निकोलाई चेर्नीशेव्स्की और महान दार्शनिक गेओर्गी प्लेख़ानोव हैं। यहां हम यह और जोड़ना चाहेंगे कि उल्यानोव परिवार भी, जिसमें व्लादीमिर इल्यीच उल्यानोव-लेनिन जन्मे और बड़े हुए, रूसी राष्ट्र के प्रगतिशील पक्ष का प्रतिनिधि था।

राष्ट्रों का दूसरा भेद समाजवादी राष्ट्र हैं, जो पहली बार सोवियत संघ में पैदा हुए और अब विश्व समाजवादी प्रणाली की स्थापना के बाद कई अन्य देशों में भी पैदा हो रहे हैं या पैदा हो चुके हैं। इस प्रकार के राष्ट्रों के निर्माण के लिए सामाजिक तथा राजनीतिक आधार रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति, अन्य देशों की समाजवादी क्रांतियों, समाज के सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरणों और समाजवादी उत्पादन रीति की विजय ने तैयार किया। समाजवाद के अन्तर्गत राष्ट्र के स्वरूप और उसकी सामाजिक प्रकृति में आमूल परिवर्तन आ जाता हैं।

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में आलोचनात्मक अभ्युक्तियां' (१९१३)।

सोवियत संघ में समाजवादी राष्ट्रों की रचना दो तरीक़ों से हुई। रूसी, उक्रइनी, बेलोरूसी, आरमीनियाई, एस्तोनियाई, लाटवियाई, लिथुग्रानियाई, मोल्दाव, तातार, आदि राष्ट्रों का जन्म और विकास पुराने बूर्जुआ राष्ट्रों के आधार पर, उनके समाजवादी रूपान्तरण और उनमें उन प्रगतिशील प्रवृत्तियों के विकास के फलस्वरूप हुआ, जिनके वाहक मेहनतकश लोग हैं।

अन्य समाजवादी राष्ट्र, जैसे कज़ाख़, उज़्बेक, किर्गिज़, ताजिक, तुर्कमान और इसी तरह कुछ काकेशियाई तथा साइबेरियाई जातियां भी, उन जातियां की बुनियाद पर बने, जिनके पास सोवियत सत्ता की स्थापना से पहले राष्ट्र बनने के लिए आवश्यक परिस्थितियां और अवसर नहीं थे। इन समाजवादी राष्ट्रों की रचना में निर्णायक भूमिका इन बातों ने अदा की कि उनके आर्थिक विकासस्तर को रूसी राष्ट्र के स्तर के बराबर उन्नत बनाया गया, उनका अपना राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग एवं बुद्धिजीवी समुदाय विकसित किया गया और सारे देश में लेनिनीय राष्ट्रीय नीति को कार्यरूप दिया गया।

अन्य समाजवादी देशों में समाजवादी राष्ट्रों का निर्माण जिस तरह हुआ, वह भी ध्यान देने योग्य है। मिसाल के तौर पर जर्मन जनवादी जनतंत्र में जर्मन समाजवादी राष्ट्र के विकास को ही लें। जर्मनी के पूर्वी भाग में मज़दूर-किसान सत्ता की स्थापना और समाजवादी समाज के निर्माण के बाद से यहां जर्मन समाजवादी राष्ट्र बनने लगा। दूसरी ओर जर्मन संघात्मक गणतंत्र में, जहां पूंजीवादी व्यवस्था सुरक्षित है तथा राष्ट्रीय प्रश्न बूर्जुआ वर्ग और मेहनतकशों के बीच असाध्य वर्ग विरोध पर आधारित है, जर्मन पूंजीवादी राष्ट्र का अस्तित्व आज भी जारी है।

समाजवादी राष्ट्र अपनी वर्गीय संरचना, आत्मिक विशिष्टताओं और समाजवादोन्मुखता की दृष्टि से पूंजीवादी राष्ट्रों से भिन्न होते हैं।

समाजवादी राष्ट्रों की सर्वाधिक लाक्षणिक विशेषताएं निम्न हैं: एकीभूत आर्थिक आधार; आम सामाजिक एकरूपता, जिसकी अभिव्यक्ति शोषणकारी वर्गों की अनुपस्थिति में पायी जाती है; कम्युनिज़्म की विजय की ओर उद्दिष्ट साझे राजनीतिक और आर्थिक हित; समान मार्क्सवादी विचार-धारा का प्राधान्य; राष्ट्र की सभी सामाजिक श्रेणियों की समान आत्मिक विशिष्टताएं; सारे राष्ट्र की समाजवाद तथा कम्युनिज़्म के निर्माण से

संबद्ध साझी नियति; राष्ट्रीय राज्य की मौजूदगी। समाजवादी राष्ट्रों की एक ग्रौर विशेषता है उनका ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद।

समाजवादी राष्ट्र को एकताबद्ध ग्रौर सुदृढ़ बनानेवाली शक्ति है मज़दूर वर्ग ग्रौर उसका ग्रग्रदल कम्युनिस्ट पार्टी।

समाजवादी राष्ट्रों के लक्षण नये सारतत्त्व ग्रौर गहन ग्रर्थ से परिपूरित बनते हैं। भाषा से ही शुरू करें। भाषा में परिवर्तन ग्रासानी से नहीं ग्राते। मगर समाजवादी राष्ट्रों के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में हुए परिवर्तनों का इस क्षेत्र पर भी गंभीर प्रभाव पड़ता है। मिसाल के लिए सोवियत संघ में सभी भाषाग्रों की पूर्ण समानता ग्रौर स्थानीय भाषाग्रों के माध्यम से पढ़ानेवाले राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना विषयक नीति के क्रियान्वयन के फलस्वरूप उन राष्ट्रीय भाषाग्रों का ग्रभूतपूर्व विकास हुग्रा, जो पहले से विद्यमान थीं, ग्रौर जो जातियां ग्रक्तूबर क्रांति से पहले राष्ट्र के रूप में संगठित न हो पायी थीं, उनकी राष्ट्रीय भाषाएं पैदा हुईं।

इस संबंध में कुछ तथ्यों ग्रौर ग्रांकड़ों का हवाला दें। सोवियत सत्ता काल में कोई ५० जातियों की भाषाग्रों ने लिखित रूप ग्रहण किया। क़ज़ाख़ ग्रौर क़िर्गिज़ जैसी कुछ जातियां, जो मिलती-जुलती भाषा बोलती थीं, मगर ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत पहले से ही एक दूसरे से स्वतंत्र विकास करती ग्रा रही थीं, विभिन्न राष्ट्रों के रूप में संगठित हुईं। यही बात तातारों ग्रौर बाश्कीरों के बारे में भी कही जा सकती है। फ़ारसीभाषी ताजिकों, पामीरी जातियों, याज़गुलामों ग्रौर यागनोबों जैसे कुछ जनगण, जो पहले विभिन्न सजातीय ईरानी भाषाएं ग्रौर बोलियां इस्तेमाल करते थे मगर ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत पहले ही एक दूसरे के निकट ग्रा चुके थे, एकीभूत ताजिक राष्ट्र के रूप में समूहबद्ध हुए। ग्राधुनिक साहित्यिक ताजिक उनकी राष्ट्रीय भाषा बनी। उन जनगण की भाषाग्रों में भी परिवर्तन ग्रा रहे हैं, जो सोवियत काल से पहले बूर्जुग्रा राष्ट्र बन चुके थे। ग्रपना मूल शब्दभंडार ग्रौर व्याकरण यथावत् सुरक्षित रखते हुए इन राष्ट्रों की भाषाएं निरन्तर समृद्ध ग्रौर विकसित बनती जा रही हैं।

सोवियत संघ के विभिन्न राष्ट्रों ग्रौर जातियों में एक साझी संपर्कभाषा का भी विकास किया गया है। यह एक ऐसे देश के लिए ग्रनिवार्य ही है, जिसमें राज्यसंचालन ग्रौर ग्रर्थव्यवस्था की एकीभूत प्रणाली है ग्रौर

जिसमें विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच स्थायी और घनिष्ठतम आर्थिक तथा सांस्कृतिक संबंध क़ायम हुए हैं। साझी संपर्कभाषा का होना इसलिए भी ज़रूरी है कि सोवियत संघ में आबादी के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की सघन प्रक्रिया चल रही है और देश में ऐसा एक भी शहर तथा गांव और ऐसा एक भी कर्मीसमुदाय नहीं है, जो बहुराष्ट्रिक और बहुजातिक न हो।

यह संपर्कभाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा रूसी है। पूछा जा सकता है: रूसी भाषा को ही यह दर्जा क्यों मिला? इसके कई ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक और स्वयं भाषायी कारण हैं।

रूसी विश्व की एक सबसे सशक्त और समृद्ध भाषा है। उसका शब्दभंडार यदि सबसे बृहद् नहीं, तो कम से कम एक सबसे बृहद् शब्दभंडार तो है ही। उसका पर्यायकोश बहुत समृद्ध है, जिसकी वजह से उसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारों को भी व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए फ़्रे० एंगेल्स ने लिखा था कि रूसी भाषा का अध्ययन हर तरह से उचित है – भाषा अध्ययन के ही उद्देश्य से भी, क्योंकि वह सबसे सशक्त तथा सबसे समृद्ध जीवित भाषाओं में से है, और जिस साहित्य को वह प्रकाश में ला रही है, उसके लिए भी।* "जिस साहित्य को वह प्रकाश में ला रही है", इन शब्दों से एंगेल्स का तात्पर्य रूसी साहित्य और कला और संस्कृति की संपन्नता से था, जो विश्व सांस्कृतिक निधि के अभिन्न अंग हैं।

लेनिन के शब्दों में अगर कहें, तो "आर्थिक लेन-देन" की आवश्यकता सदा एक राज्य में रहनेवाले राष्ट्रों और जातियों को (जब तक वे साथ-साथ रहना चाहते हैं, तब तक) बहुसंख्यकों की भाषा सीखने को बाध्य करती है। सोवियत संघ में बहुसंख्यकों की भाषा रूसी थी।

आगे। रूसी, उक्रइनी और बेलोरूसी भाषाएं कई अन्य विदेशी भाषाओं की बोलियों की अपेक्षा आपस में कहीं अधिक मिलती-जुलती हैं। इन तीन राष्ट्रों के लोगों की संख्या सोवियत संघ की कुल आबादी के ७५ प्रतिशत से अधिक है।

रूसी भाषा कम्युनिस्ट समाज के नये मानव के निर्माण की प्रक्रिया में ऐक्यकारी साधन का काम करती है। सोवियत संघ के किसी भी राष्ट्र

---

* फ़्रे० एंगेल्स: 'प्रवासी साहित्य' (१८७४–१८७५)।

का कोई भी आदमी देश के किसी भी अन्य राष्ट्र या जाति के आदमी के साथ आसानी से रूसी में संपर्क कर सकता है। इसलिए रूसी भाषा की बदौलत हर राष्ट्र की उत्कृष्टतम सांस्कृतिक उपलब्धियां सोवियत संघ के सभी राष्ट्रों की सांस्कृतिक संपत्ति बन जाती हैं।

इस तथ्य पर भी ध्यान दें। सोवियत संघ की ग़ैर-रूसी भाषाएं रूसी से नये-नये, आधुनिक शब्द लेकर अपने में समाहित करती हैं और समृद्ध बनती हैं। दूसरी ओर स्वयं रूसी भी इन भाषाओं से नये-नये शब्द लेकर अपना शब्दभंडाट बढ़ाती है।

सोवियत संघ की १९७० की जनगणना ऊपर बताये गये इन सब तथ्यों की पुष्टि करती है। उसने दिखाया कि देश में रूसियों की कुल संख्या लगभग १३ करोड़ होने पर भी १४.१८ करोड़ लोगों ने, यानी सोवियत संघ की ५८.७ प्रतिशत आबादी ने रूसी को अपनी मातृभाषा बताया। इस तरह १९७० में कोई १.३ करोड़ ग़ैर-रूसियों ने रूसी को मातृभाषा घोषित किया, जबकि १९५९ की जनगणना में उनकी तादाद केवल १ करोड़ ही थी।

हमारी दृष्टि में निम्न तथ्य भी लाक्षणिक हैं। कतिपय ग़ैर-रूसी जनगण में रूसी को अपनी मातृभाषा बतानेवालों का प्रतिशत काफ़ी अधिक है। अन्य भाषाएं, विशेषत: रूसी बोलनेवालों की संख्या यहूदियों में ८२.३ प्रतिशत, इतेलमेनों में ६४.३ प्रतिशत, एवेंकों में ४८.७ प्रतिशत, मन्सियों में ४७.६ प्रतिशत, एवेनों में ४४ प्रतिशत और कारेलों में ३७ प्रतिशत हैं। समाजशास्त्रीय जांचों से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि सोवियत संघ की ९०–९५ प्रतिशत आबादी रूसी भाषा इतना जानती है कि उसे संपर्कभाषा के रूप में इस्तेमाल कर सके।

यह आंकड़ा भी दिलचस्प है कि ४१.९ प्रतिशत लोगों ने रूसी को दूसरी भाषा बताया, जिसे वे अच्छी तरह जानते हैं। इससे पता चलता है कि सोवियत संघ में द्विभाषिता का व्यापक प्रचलन है, यानी काफ़ी अधिक ग़ैर-रूसी लोग अपनी मातृभाषा के अलावा रूसी को भी, जो विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच संपर्कभाषा का काम करती है, अच्छी तरह जानते हैं। अधिसंख्य भाषाविदों और समाजशास्त्रियों का मत है कि द्विभाषिता की वृद्धि सोवियत संघ के सभी जनगण के हित में है और सोवियत राष्ट्रीय नीति के जनवादी स्वरूप को प्रकट करती है।

ध्यान रहे कि सोवियत संघ में ग़ैर-रूसी राष्ट्रों के बीच रूसी का प्रसार पूर्ण स्वैच्छिकता के आधार पर हो रहा है। सारी राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन की तरह यहां भी ज़ोर-ज़बर्दस्ती बिल्कुल इस्तेमाल नहीं की जाती।

फिर यह सूचक भी उल्लेखनीय है कि संघीय जनतंत्रों में स्थानीय राष्ट्रिकता के बहुलांश भाग (६० प्रतिशत से अधिक) ने अपनी राष्ट्रीय भाषा को ही मातृभाषा घोषित किया। इससे पता चलता है कि सोवियत संघ में सभी राष्ट्रों और जातियों की भाषाओं के निर्बाध विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियां बनायी जा चुकी हैं। साथ ही यह कम्युनिज़्मविरोधियों के इन विद्वेषपूर्ण दावों का भी खण्डन करता है कि सोवियत संघ में "बलात् मिश्रण", "रूसीकरण", इत्यादि किया जा रहा है।

आज रूसी विश्व की एक प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गयी है। और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्को, पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद तथा कई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में इस्तेमाल किया जाता है। विश्व वैज्ञानिक साहित्य में अंग्रेज़ी के बाद रूसी का दूसरा स्थान है।

विदेशों में रूसी भाषा के प्रसार की कहानी दिलचस्प है। रूस की सीमाओं से बाहर रूसी का प्रसार पहली बार ११वीं सदी में हुआ। रूसी राजा यारोस्लाव बुद्धिमान की पुत्रियां यूरोपीय सम्राटों को ब्याही गयी थीं और उनके तथा उनके परिचरों के साथ रूसी यूरोप में पहुंची। शेक्सपीयर और उनके समकालीनों ने रूसी भाषा में गहरी रुचि दिखायी थी। उस काल में ही विदेशों में रूस, उसके इतिहास, संस्कृति और प्रकृति में बड़ी दिलचस्पी दिखायी जाने लगी थी। रूसी के प्रसार में पीटर प्रथम के सुधारों ने महती भूमिका निभायी, जिनके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप के साथ रूस के संपर्क बहुत बढ़ गये। १६वीं सदी में पश्चिमी यूरोपीय पाठक रूसी का अध्ययन करने लगे, ताकि गोगोल, तुर्गेनेव, तोल्स्तोय, दोस्तोयेव्स्की, आदि की रचनाएं मूल में पढ़ सकें।

भाषा लोगों के बीच संपर्कस्थापन का माध्यम ही नहीं होती। जैसा कि रूसी कवि व्याज़ेम्स्की ने बहुत सुंदर कहा है, भाषा जनता की आत्माभिव्यक्ति है, क्योंकि वह उसकी संस्कृति, विचारों और आत्मा को समझने-पहचानने की कुंजी का काम करती है। अपने इसी दरजे के कारण भाषा महान, सशक्त और मानवता के लिए आवश्यक बन जाती है। यही दरजा रूसी भाषा को भी प्राप्त हुआ।

आज सोवियत संघ से बाहर विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बहुत से लोग न्यूनाधिक मात्रा में रूसी जानते हैं। वह ६७ देशों में अधिकृत रूप से पढ़ायी जाती है। रूसी भाषा और साहित्य के अध्यापकों की अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में यूरोप, अमरीका और आस्ट्रेलिया के देशों के सैकड़ों अध्यापक हिस्सा लेते हैं। रूसी भाषा तथा साहित्य के अध्यापकों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाया गया है। "देशाध्ययन और विदेशीभाषा के रूप में रूसी का अध्यापन" विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियां आयोजित की जाती हैं।

इस तरह रूसी भाषा, जो सोवियत संघ में सबकी साझी भाषा सी बन गयी है, सोवियत राष्ट्रों और जातियों के जीवन में प्रगतिशील भूमिका निभाती है। वह उन्हें सोवियत संघ तथा समस्त विश्व की आधुनिकतम वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित कराती है और राष्ट्रों की मैत्री को सुदृढ़ बनाती है। जैसा कि लेओनीद ब्रेज़्नेव ने सो० स० ज० सं० की पचासवीं वर्षगांठ विषयक अपनी रिपोर्ट में कहा था: "रूसी भाषा विश्व की एक सर्वमान्य भाषा बन गयी है।"

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, साझा क्षेत्र राष्ट्र का एक लक्षण है। समाजवाद की परिस्थितियों में राष्ट्रों की क्षेत्रीय एकता निरन्तर बढ़ती जाती है। उदाहरण के तौर पर तुर्कमान समाजवादी राष्ट्र को ही लें।

एक जाति के रूप में तुर्कमानों का आविर्भाव १३–१५ वीं सदियों में ही हो गया था। मगर राष्ट्र के रूप में वे संगठित तब तक न हो पाये, जब तक अक्तूबर क्रांति और तुर्कमान जनतंत्र में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना न हुई। इसका कारण तुर्कमानों का आर्थिक पिछड़ापन ही नहीं, बल्कि उनका क्षेत्रीय बिखराव भी था। ३.५ लाख तुर्कमान तुर्किस्तान के गवर्नर-जनरल द्वारा शासित प्रदेश के ट्रांस-कैस्पियन प्रान्त में, लगभग २ लाख ख़ीवा रियासत में और लगभग १.६५ लाख बुख़ारा अमीर के राज्य में रहते थे। ईरान और अफ़गानिस्तान में भी तुर्कमानों की संख्या काफ़ी अधिक थी।

क्रांति के बाद ही १९२४ में मध्य एशिया में कम्युनिस्ट पार्टी की पहल पर और नेतृत्व में राष्ट्रीय-राज्यीय सीमानिर्धारण हुआ। तुर्कमान और उज़्बेक सोवियत समाजवादी जनतंत्र बनाये गये, जो आगे चलकर सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ में शामिल हुए। मध्य एशिया में ही

ताजिक सोवियत समाजवादी जनतंत्र (१९२९) और क़िर्गिज़ सोवियत समाजवादी जनतंत्र (१९३६) भी स्थापित किये गये। इस तरह सोवियत सत्ता के तत्त्वावधान में मध्य एशिया के लोगों के राष्ट्रीय राज्य अस्तित्व में आये, जो समाजवादी राष्ट्रों के बनने की एक महत्त्वपूर्ण शर्त था।

समाजवादी राष्ट्रों की आर्थिक एकता और मनोवृत्ति आमूलचूल बदल गयी हैं। समाजवाद में राष्ट्रों का आर्थिक आधार समाजवादी उत्पादन रीति होती है, जिसकी नींव उत्पादन साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व है। समाजवादी राष्ट्रों का राजनीतिक आधार सर्वहारा का अधिनायकत्व और वैचारिक आधार मार्क्सवाद-लेनिनवाद तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद हैं।

पिछली दो जनगणनाओं (१९५९ और १९७०) के बीच की अवधि में अधिकांश सोवियत राष्ट्रों की आबादी में बहुत वृद्धि हुई है। इस दौरान मिसाल के लिए, रूसियों की आबादी १.५ करोड़, उक्रइनों की आबादी ३५ लाख और बेलोरूसियों की आबादी ११ लाख बढ़ी। उन राष्ट्रों और जातियों की आबादी में विशेष रूप से अधिक बढ़ौती हुई, जिसमें पुराने रिवाज और परंपराएं अभी भी काफ़ी कुछ शेष हैं और इसलिए परिवार नियोजन का उनमें व्यापक प्रचार नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए, इसी काल में मध्य एशियाई राष्ट्रों और आज़रबैजानियों की आबादी ५० प्रतिशत तक बढ़ी है। ऐसी वृद्धि दर विश्व के किसी और देश, किसी और राष्ट्र में देखने को नहीं मिलती। मध्य एशियाई लोगों की संख्या में तीव्र वृद्धि के फलस्वरूप देश की कुल आबादी में उनका हिस्सा ६ प्रतिशत से बढ़कर अब ८ प्रतिशत हो गया है।

सोवियत संघ में समाजवादी राष्ट्रों के जन्म और विकास का इतिहास बूर्जुआ लेखकों की एतद्विषयक कपोलकल्पनाओं का खण्डन करता है कि समाजवाद में राष्ट्र नाम की कोई चीज़ नहीं रहती। समाजवादी राष्ट्रों की उत्पत्ति और उन्नति का अर्थ राष्ट्रों का नहीं, बल्कि उन चीजों का ख़ात्मा है, जिन्होंने उनके आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास को अवरुद्ध किया था, यानी उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व और उसकी वजह से पैदा हुए सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्पीड़न का ख़ात्मा।

पिछले वर्षों से बूर्जुआ साहित्य में राष्ट्रों के भेद विषयक एक नये सिद्धान्त की व्यापक चर्चा होने लगी है। संक्षेप में यह सिद्धान्त यों है: विश्व के सभी राष्ट्र "धनी" और "ग़रीब" राष्ट्रों में बांटे जाते हैं।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक पश्चिमी बूर्जुआ अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री और इतिहासकार हैं, जैसे आर्नोल्ड टॉयनबी, पी० मूसा, बी० वार्ड, इत्यादि। वे विकसित पूंजीवादी और समाजवादी देशों को समतुल्य मानते हैं, उन्हें एक ही कोटि – "धनी" राष्ट्रों की कोटि – में रखते हैं और इस तरह विकासमान राज्यों की, जिनमें "ग़रीब" राष्ट्र रहते हैं, जनता से उनका भेद दर्शाते हैं।

पूंजीवादी समाज के अन्दर व्याप्त वर्ग संघर्ष और राष्ट्रों के परस्परसंबंधों के सिद्धान्तों से संबंधित विज्ञान को विकृत करते हुए ब्रिटिश "मार्क्सवादविशेषज्ञा" बारबरा वार्ड अपनी पुस्तक "अन्तरिक्षयान 'पृथ्वी'" में अपने इस दावे को स्वयंसिद्ध तथ्य के रूप में पेश करती हैं कि "आज विश्व का वास्तविक विभाजन पूंजीवादी और समाजवादी राज्यों के बीच नहीं, बल्कि धनी और ग़रीब देशों के बीच है।"

"धनी" और "ग़रीब" राष्ट्रों का सिद्धान्त वस्तुतः इसी तरह के दृष्टिकोणों पर आधारित है।

यह सिद्धान्त मुख्यतः इस राजनीतिक उद्देश्य से प्रतिपादित किया गया है कि उसकी सहायता से विश्वव्यापी साम्राज्यवादविरोधी मोर्चे की एकता भंग की जाये और विश्व समाजवाद और मज़दूर तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाया जाये। फिर यह भी सिद्ध करने की कोशिश की जाती है कि "तीसरी दुनिया" के राष्ट्र प्रगति करने में, वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति करने में असमर्थ हैं और नवस्वाधीन देशों के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए साम्राज्यवाद कतई उत्तरदायी नहीं है।

इस नवप्रचारित सिद्धान्त के प्रवर्तक समाजवादी देशों पर कीचड़ उछालने से बाज़ नहीं आते। मिसाल के लिए, वे कहते हैं कि विकसित औद्योगिक राज्य होने के नाते सोवियत संघ के हित नवस्वाधीन विकासमान देशों के हितों से मेल नहीं खाते। वास्तव में इस सिद्धान्त का अन्तिम लक्ष्य विश्व समाजवादी प्रणाली के देशों के साथ एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के राष्ट्रों की मैत्री पर कुठाराघात करना है।

सभी जानते हैं कि सोवियत संघ ने मुनाफ़ा कमाने के उद्देश्य से विकासमान देशों की संपदा का शोषण कभी नहीं किया है और न कर रहा है। सारे विश्व को भली-भांति मालूम है कि नवोदित राज्यों के पिछड़ेपन के लिए सोवियत संघ तनिक भी उत्तरदायी नहीं है और इन

देशों की आर्थिक उन्नति के लिए वह जो निःस्वार्थ सहायता देता है, वह साम्राज्यवाद एवं नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध उत्पीड़ित राष्ट्रों के संघर्ष के साथ उसकी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी एकता की अभिव्यक्ति ही है।

खेद की बात है कि विकासमान देशों के कुछ-एक राजनीतिज्ञ भी उपरोक्त सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। मिसाल के लिए १९६४ में जेनेवा में और १९६८ में दिल्ली में हुए संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलनों में उन्हों ने "धनी" और "ग़रीब" राष्ट्रों की बात तरह तरह से उठायी। किन्तु इस सबके बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में "धनी" और "ग़रीब" राष्ट्रों के सिद्धान्त को उत्तरोत्तर ठुकराया जा रहा है। भारतीय साप्ताहिक "मेनस्ट्रीम" ने लिखा था कि एक ओर पश्चिम तथा जापान और दूसरी ओर सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के विकास पथों के अन्तर की उपेक्षा करने से विकासमान देशों को ही नुकसान होता है। "धनी" और "ग़रीब" देशों में विश्व के इस कृत्रिम विभाजन से पश्चिमी राष्ट्रों को विकासमान देशों की अर्थव्यवस्था की वर्तमान हालत के लिए अपनी भौतिक तथा नैतिक उत्तरदायिता से छुटकारा पाने में मदद मिलती है।

"धनी" और "ग़रीब" राष्ट्रों का प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त वास्तव में समाजवादी और बूर्जुआ, इन दो श्रेणियों में राष्ट्रों के मार्क्सवादी विभाजन को ग़लत ठहराने की कोशिश ही है। मगर स्वयं यह कोशिश कितनी निराधार है, इसे हर कोई देख सकता है।

३. राष्ट्रों के विकास का मूलभूत सिद्धान्त। राष्ट्रीय प्रश्न से सम्बन्धित प्रवृत्तियां

जैसा कि व्ला० इ० लेनिन ने सिद्ध किया था, पूंजीवाद में राष्ट्रीय प्रश्न के बारे में दो प्रवृत्तियां काम करती हैं।*

पहली प्रवृत्ति है राष्ट्रीय जीवन तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों की जागृति, समस्त राष्ट्रीय उत्पीड़न के ख़िलाफ़ संघर्ष और राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना।

यही पहली प्रवृत्ति क्यों है और उसका सारतत्त्व क्या है?

पहले यह बता दें कि "राष्ट्रीय जीवन की जागृति" का क्या मतलब है। ऐसी जागृति तब आती है, जब राष्ट्रीय मंडी बन जाने से उन आर्थिक क्षेत्रों के बीच, जो पहले अपने ही दायरों में सीमित थे, मालों का विनिमय बढ़ जाता है। राष्ट्रीय मंडी के पैदा होने के लिए ज़रूरी है कि कोई एक बोली समस्त जनता की बोलचाल की भाषा बने। इन सब बातों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय चेतना विकसित होती है।

आगे। जैसा कि बताया जा चुका है, पूंजीवाद की परिस्थितियों में राष्ट्र बनते हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ते हैं। पूंजीवाद में ही राष्ट्रीय राज्य भी बनते हैं, जिसमें कभी-कभी एकाधिक राष्ट्र सम्मिलित होते हैं।

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में आलोचनात्मक अभ्युक्तियां' (१९१३)।

पहली प्रवृत्ति बूर्जुग्रा राष्ट्रों के समेकन की बस्तुगत प्रक्रिया को प्रतिलक्षित करती है। श्रौर राष्ट्रीय समेकन सामन्तवादी बिखराव को ख़त्म करने का साधन श्रौर सामन्तवाद के उन्मूलन तथा पूंजीवादी उत्पादन रीति की विजय में सहायक कारक है, इसलिए वह प्रगतिशील है। यह तो हुई पहली बात।

दूसरे, विभिन्न जनों के श्रार्थिक सन्निकटन की प्रवृत्ति, जो उत्पादक शक्तियों की वृद्धि के बस्तुगत श्रार्थिक नियम को प्रतिबिंबित करती है, राष्ट्रीय श्रलगाव के श्रन्त श्रौर मज़दूर वर्ग की बढ़ोतरी में सहायक बनती है। इन सबसे श्रन्ततः साझे शत्रु साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के लिए श्रन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मज़दूरों श्रौर मेहनतकशों के एकजुट होने का काम श्रासान हो जाता है।

तीसरे, यह प्रवृत्ति चूंकि विस्तार श्रौर गहराई, दोनों में पूंजीवाद के विकास से संबद्ध है, इसलिए वह भावी विश्व समाजवादी श्रर्थप्रणाली के लिए भौतिक श्राधार तैयार करती है।

किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिये – श्रौर ऐतिहासिक श्रनुभव इसकी पुष्टि करता है – कि पूंजीवाद की परिस्थितियों में ऐसी प्रवृत्ति प्रायः बेलगाम राष्ट्रवाद का रूप ले लेती है। ऐसा तब होता है, जब किसी जन की "राष्ट्रीय विशिष्टता", श्रन्य राष्ट्रों के मुक़ाबले उसकी "प्रवरता", "उत्कृष्टता" श्रादि के सिद्धान्त प्रतिपादित श्रौर क्रियान्वित किये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वैसे भी विभाजित विश्व के श्रागे विभाजन के लिए युद्ध छेड़े जाते हैं।

ऐसा भी होता है कि जिन देशों में राष्ट्र बहुत ही तरह-तरह की बुनियाद पर बनते हैं, जैसे कि संयुक्त राज्य श्रमरीका में, वहां राष्ट्रीय विशिष्टता नहीं, श्रपितु नसली विशिष्टता का, काले लोगों के मुक़ाबले गोरे लोगों की उत्कृष्टता का प्रचार किया जाता है। कभी-कभी इस प्रकार का प्रचार भी पाया जाता है कि स्वयं श्वेत लोगों के बीच सबसे श्रेष्ठ श्रांग्ल-सेक्सन मूल के लोग हैं।

श्रब दूसरी प्रवृत्ति पर विचार करें। यह है प्रत्येक प्रकार के श्रन्तर्राष्ट्रीय संसर्ग का विकास तथा उसकी बढ़ती हुई प्रायिकता, राष्ट्रीय प्राचीरों का विभंजन, पूंजी की, सामान्यतः श्रार्थिक जीवन की, राजनीति, विज्ञान, श्रादि की श्रन्तर्राष्ट्रीय एकता की स्थापना।

राष्ट्र का गठन पूरा होने और राष्ट्रीय राज्य बन जाने के बाद पूंजीवाद के लिए अपना ही राष्ट्रीय आधार कम पड़ने लग जाता है। उसे जनशोषण के ज़रिये कमायी गयी पूंजी को लगाने के लिए मंडियों और सस्ती श्रमशक्ति की ज़रूरत होती है। इस समस्या को वह राष्ट्र के दायरे से बाहर निकलकर, पराये देशों में घुसकर, कमज़ोर जनों को अपने आधीन बनाकर हल करता है। इस तरह वह प्रक्रिया घटती है, जिसे व्ला० इ० लेनिन ने "राष्ट्रीय प्राचीरों का विभंजन" कहा था और जिसकी प्रेरक शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप लेनेवाली पूंजी है। इस तरीक़े से पूंजीवाद अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर साझे आर्थिक जीवन के निर्माण में सहायक बनता है।

पहली प्रवृत्ति की तरह दूसरी प्रवृत्ति भी अपने परिणामों की दृष्टि से निस्संदेह प्रगतिशील है। वह प्रबल राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के उभड़ने और शोषण, अधिकारहीनता और साम्राज्यवादी शिकंजों से मुक्ति के लिए राजनीतिक संघर्ष छिड़ने का कारण बनती है। सारतः यह प्रवृत्ति स्वतंत्रता और पूर्ण राजनीतिक एवं आर्थिक समानता के लिए राष्ट्रों की ललक और बलात् एकीकरण के विरुद्ध उनके संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। वह राष्ट्रीय तथा औपनिवेशिक उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्षरत मेहनतकशों की महती शक्ति को इतिहास के मंच पर ला खड़ा करती है। यही प्रवृत्ति भावी विश्व समाजवादी अर्थप्रणाली के लिए बौद्धिक तथा मानसिक आधार तैयार करती है।

स्पष्ट है कि पूंजीवाद की परिस्थितियों में यह प्रवृत्ति काफ़ी प्रतिक्रियावादी रूप में प्रकट होती है, जैसे कुछ राष्ट्रों तथा जातियों द्वारा दूसरे राष्ट्रों तथा जातियों को अपने आधीन बनाना, युद्धों का कारण बननेवाले अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का बढ़ना, आदि-आदि। अतः राष्ट्रों का सन्निकटन सामान्यतः ज़ोर-ज़बर्दस्ती के तरीक़ों से किया जाता है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय विरोध घटने के बजाय उल्टे बढ़ते ही हैं। पूंजीवाद में सभी राष्ट्र दो सर्वथा विपरीत ध्रुवों या हिस्सों में बंटे होते हैं: शोषक अल्पसंख्या और शोषित बहुसंख्या। इनके हितों में कोई मेल नहीं होता और न कभी हो ही सकता है।

ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष कभी-कभी राष्ट्रवाद को जन्म देता है। ऐसा विशेषतः उन देशों में होता है, जहां

संघर्ष की बागडोर बूर्जुआ वर्ग के हाथों में होती है और सर्वहारा वर्ग अपनी मार्क्सवादी पार्टी के अभाव में या उसके कमज़ोर तथा अल्पसंगठित होने के कारण पर्याप्त रूप से एकजुट नहीं होता।

स्वाभाविकत: इस सबके फलस्वरूप संघर्ष बढ़ जाता है और राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में उग्रतम असाध्य अन्तर्विरोध पैदा होते हैं।

दूसरी प्रवृत्ति की प्रधानता सुविकसित पूंजीवाद, यानी साम्राज्यवाद की अवस्था में पायी जाती है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह पूंजीवाद की एकाधिकारों की उत्पत्ति से पहले की अवस्था में प्रकट नहीं होती है।

इस तरह कहा जा सकता है कि पूंजीवाद की परिस्थितियों में राष्ट्रीय प्रश्न संबंधी दोनों मुख्य प्रवृत्तियां आपस में टकराती हैं। इसकी अभिव्यक्ति यह है कि राष्ट्रों और जातियों में स्वतंत्रता, राष्ट्रीय, स्वाधीन राज्यों की स्थापना की रंचमात्र भी आकांक्षा पैदा होते ही साम्राज्यवादी बूर्जुआ वर्ग उसे बड़ी निर्ममता से दबाने की कोशिश करने लगता है। दूसरी अभिव्यक्ति यह है कि बूर्जुआ वर्ग द्वारा निर्मित विभिन्न संघ – "राष्ट्रमण्डल" – रक्तपात, पराधीनीकरण, हिंसा, औपनिवेशिक क़ब्ज़ों, नवउपनिवेशवाद की नींव पर टिके होते हैं।

यह सब मिलकर इस बात की पुष्टि करता है कि पूंजीवाद के रहते राष्ट्रीय प्रश्न की दो प्रवृत्तियों के विरोध को और सामान्यत: सारे राष्ट्रीय प्रश्न को ही कतई हल नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में बूर्जुआ वर्ग की नीति अन्तत: पूर्ण विफल सिद्ध होती है।

व्ला० इ० लेनिन ने कहा था कि राष्ट्रीय प्रश्न के मामले में कार्यरत दो प्रवृत्तियों की अन्योन्यक्रिया का द्वन्द्व पूंजीवाद का सार्वजनीन नियम, पूंजीवाद में राष्ट्रों तथा राष्ट्रीय प्रश्न के विकास का नियम है।

सर्वहारा के क्रांतिकारी संघर्ष, राष्ट्रीय प्रश्न पर विज्ञानसम्मत नीति के निर्धारण और मेहनतकश जनों में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना भरने के लिए इन दो प्रवृत्तियों के सार, उनके अन्त:संबंधों तथा अन्योन्यक्रिया और उनकी अभिव्यक्ति के रूपों को ठीक से समझना बहुत महत्त्व रखता है।

राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाते हुए इन दोनों प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है। यदि पहली प्रवृत्ति सभी राष्ट्रों, नसलों और भाषाओं

की समानता का समर्थन ज़रूरी बनाती है, तो दूसरी सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की रक्षा और बूर्जुआ राष्ट्रवाद के साथ अटल संघर्ष करते रहने की आवश्यकता पर बल देती है।

राष्ट्रों और जातियों के विकास का नियम कम्युनिस्टों के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का यथार्थ आधार है। वे अपने कार्यक्रम और अपने संघर्ष में एकीभूत विश्व अर्थप्रणाली की स्थापना और राष्ट्रों के बीच खड़ी राष्ट्रीय दीवारों के भंजन की प्रवृत्ति को सदा ध्यान में रखते हैं। यह नियम जनगणों के सहसंबंधों को एकीभूत, समग्र, विश्वव्यापी प्रक्रिया के रूप में, सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक प्रक्रियाओं के अभिन्न अंग के रूप में देखने की संभावना देता है। तब हर राष्ट्र, हर देश का इतिहास उसी की आन्तरिक सामाजिक परिघटना नहीं रह जाता।

इस प्रकार राष्ट्रीय प्रश्नविषयक दो प्रवृत्तियों का ज्ञान और राजनीतिक कार्यकलाप में उनका सही-सही उपयोग शोषणकारी राष्ट्रों के सर्वहारा के संघर्ष को शोषित राष्ट्रों के मेहनतकशों के संघर्ष के साथ एकाकार बनाने की संभावना देते हैं। सामाजिक जीवन के अन्तर्राष्ट्रीकरण की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवादी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में, समाजवाद और कम्युनिज़्म के निर्माण में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के मज़दूरों तथा अन्य मेहनतकशों के घनिष्ठ सन्निकटन का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विज्ञान का कहना है कि समाजवाद की विजय के बाद और कम्युनिज़्म निर्माण के दौर में भी राष्ट्रीय प्रश्न संबंधी दो प्रवृत्तियां कार्यरत रहती हैं।

किन्तु उनके विश्लेषण से पता चलता है कि अपने सार की दृष्टि से वे पूंजीवाद में कार्यरत प्रवृत्तियों से सर्वथा भिन्न हैं। यहां बिल्कुल ही दूसरे सामाजिक कारक होते हैं। वे राष्ट्रीय प्रश्न के मामले में समाजवादी सिद्धान्तों की उत्तरोत्तर विजय तथा सुदृढ़ीकरण को प्रतिबिंबित तथा व्यक्त करते हैं। समाजवाद में कार्यरत दो प्रवृत्तियों की नयी सामाजिक अन्तर्वस्तु होती है। वे समाज के विकास पर रचनात्मक प्रभाव डालती हैं।

समाजवाद में कार्यरत पहली प्रवृत्ति है सभी राष्ट्रों और जातियों का उत्थान, उनका तीव्र तथा सर्वतोमुखी विकास, उनके आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक पहलू में प्रगति, उनकी सर्वसत्ता का सुदृढ़ीकरण और राष्ट्रीय जनतंत्रों के अधिकारों का विस्तार। यह

प्रक्रिया राष्ट्रीय झगड़ों, राष्ट्रीय अलगाव और अहंमन्यता की वृद्धि के ज़रिये नहीं, जैसा कि पूंजीवाद में होता है, अपितु बंधुत्वपूर्ण सहायता और मैत्री की ओर लक्षित राष्ट्रों के संयुक्त प्रयासों के ज़रिये संपन्न होती है।

राष्ट्रों के उत्थान से मार्क्सवादियों का तात्पर्य यही होता है कि भौतिक तथा आत्मिक विकास में विभिन्न जनगण द्वारा पायी गयी महती उपलब्धियां देश की सभी जातियों और राष्ट्रों की संयुक्त संपत्ति हैं। मगर यह बात किसी भी पूंजीवादी देश के बारे में नहीं कही जा सकती, चाहे वह कितना ही विकसित क्यों न हो।

दूसरी प्रवृत्ति है सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और राष्ट्रों के परस्परसंवर्धन के आधार पर उनका उत्तरोत्तर एक दूसरे के निकट आना। समाजवाद में राष्ट्रों का सन्निकटन उनके रहन-सहन, अर्थव्यवस्था और संस्कृति में बहुत से साझे तत्त्वों को जन्म देता है।

समाजवाद और कम्युनिज़्म निर्माण के दौरान राष्ट्रों के उत्थान और सन्निकटन की प्रवृत्तियां बढ़ती हैं, साथ-साथ काम करती हैं और एक दूसरे की पूरक बनती हैं। वे एक ही समष्टि के, समाजवादी समाज के आर्थिक, राजनीतिक, वैचारिक और आत्मिक आधारों के सुदृढ़ीकरण की एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं।

समाजवादी राष्ट्रों और जातियों का सन्निकटन उनकी अर्थव्यवस्था, संस्कृति तथा समस्त आत्मिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास में सहायक बनता है। दूसरी ओर राष्ट्रों और जातियों का विकास तथा उत्थान उन्हें एक दूसरे के और अधिक निकट लाता है।

राष्ट्रीय प्रश्न की ये दो प्रवृत्तियां ठोस रूप में कैसे व्यक्त होती हैं, इसकी सविस्तार चर्चा अगले परिच्छेद में की जायेगी।

४. पूंजीवाद – राष्ट्रीय मुक्ति ग्रान्दोलन का शत्रु

ग्रपने इतिहास के ग्रादिकाल में पूंजीवाद ने सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए राष्ट्रों के जन्म ग्रौर विकास में रचनात्मक भूमिका ग्रदा की थी। किन्तु ग्रागे चलकर वही पूंजीवाद, व्ला० इ० लेनिन के शब्दों में, राष्ट्रों का सबसे बड़ा उत्पीड़नकर्त्ता बन गया।

राष्ट्रीय उत्पीड़न ग्रौर राष्ट्रीय वैमनस्यों का ग्रार्थिक ग्राधार उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व का बोलबाला ग्रौर मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण है। उनका राजनीतिक ग्राधार पराये देशों पर क़ब्ज़ा ग्रौर ग्रन्य जनगण का पराधीनीकरण है। जहां तक राष्ट्रीय उत्पीड़न की वैचारिक ग्रभिव्यक्ति का सवाल है, तो वह है प्रभुत्वसंपन्न राष्ट्रों का ग्रंधराष्ट्रवाद ग्रौर राष्ट्रवाद।

यही कारण है कि मुट्ठीभर उत्पीड़क ग्रौर ग्रधिसंख्य उत्पीड़ित – इस सिद्धान्त के ग्रनुसार राष्ट्रों ग्रौर जातियों का विभाजन पूंजीवाद का एक सबसे लाक्षणिक ग्रौर महत्त्वपूर्ण लक्षण बन गया है। राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में पूंजीवाद की सारी नीति इसी नींव पर ग्राधारित है।

इस तरह राष्ट्रीय उत्पीड़न पूंजीवाद की स्वभावगत विशेषता है, जिसे पूंजीवाद की परिस्थितियों में ख़त्म नहीं किया जा सकता। इस घृणित वास्तविकता का ग्रन्त करने के लिए वर्गों का उन्मूलन करना, यानी समाजवाद लाना ग्रावश्यक है।

पूंजीवाद का इतिहास अभूतपूर्व राष्ट्रीय उत्पीड़न की मिसालों से भरा पड़ा है।

ज़ारशाही रूस को ही लें। रूस का ऐतिहासिक विकास कुछ इस ढंग से हुआ कि वह एक बहुजातिक, बहुराष्ट्रिक राज्य बन गया। उसके विराट इलाक़े में सौ से अधिक राष्ट्रों, जातियों और नृजातिसमूहों के लोग रहते थे, जिनकी कुल आबादी १९१७ में १६,३०,००,००० के क़रीब थी। उनमें आधे से भी कम (४३ प्रतिशत) रूसी थे और शेष ग़ैर-रूसी। रूस के जनगण में राष्ट्र-जाति का ही भेद न था, अपितु वे राष्ट्रीय एकबद्धता और सामाजिक-राजनीतिक विकास के स्तर की दृष्टि से भी एक दूसरे से भिन्न थे।

१९वीं और २०वीं सदियों के संधिकाल में साम्राज्यवाद के युग में प्रवेश करके रूस पूंजीवाद के विकास के औसत स्तर पर पहुंच गया। अब पूंजीवाद तेज़ी से एकाधिकारी पूंजीवाद का रूप लेने लगा था। इस काल के रूस की विशेषता थी घोर विषमताएं। एक ओर देश में एकाधिकारी पूंजी का संकेन्द्रण बढ़ रहा था और औद्योगिक उत्पादन अत्यधिक संकेन्द्रित बन रहा था और दूसरी ओर वह फिर भी कृषिप्रधान देश बना हुआ था। उसकी अधिसंख्य आबादी देहातों में रहती थी और अर्थतंत्र तथा राजनीतिक व्यवस्था पर भूतपूर्व कृषिदास प्रणाली की छाप अभी भी बाक़ी थी।

विभिन्न जनों की स्थिति का विश्लेषण काफ़ी बहुरंगी चित्र पेश करता है। उदाहरण के लिए, रूसी बूर्जुआ राष्ट्र विकास का मध्यम पूंजीवादी स्तर हासिल कर चुका था। कुछ हद तक यही उक्रइना, पोलैण्ड, बाल्टिकतटीय प्रदेशों के जनगण के बारे में भी कहा जा सकता है, जो तब रूस में शामिल थे। काकेशियापार, वोल्गातट और आंशिकतः तुर्किस्तान के जनगण पूंजीवाद के विकास के आरंभिक चरण में थे। जहां तक सारे मध्य एशिया (तुर्किस्तान के गवर्नर-जनरल, बुख़ारा के अमीर और ख़ीवा के ख़ान द्वारा शासित प्रदेशों) की जनता का सवाल है, तो सामान्यतः वह अभी भी प्राग्-पूंजीवादी अवस्था में थी और धीमे-धीमे तथा बड़े कष्ट के साथ पूंजीवाद की ओर रेंग रही थी।

रूसी साम्राज्य में अनेक ऐसी जातियां और नृजातिसमूह भी थे, जिनमें पितृसत्तात्मक सामंतवादी संबंधों का बोलबाला था। फिर कुछ समूह

अभी गोत्राधारित संबंधों के स्तर पर ही रुके हुए थे। ये मुख्यतः शिकार तथा पशुपालन द्वारा जीवननिर्वाह करनेवाले ख़ानाबदोश समूह थे। साम्राज्य के कुछ हिस्सों में दासप्रथात्मक व्यवस्था के अवशेष भी देखे जा सकते थे।

ज़ारशाही पर निर्भरता की दृष्टि से भी रूस के सभी जन एक-सी स्थिति में नहीं थे। मध्य एशिया और क़ज़ाख़स्तान, यूरोपीय रूस का दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी भाग और काकेशिया रूसी पूंजीवाद के उपनिवेश बना दिये गये थे। व्ला० इ० लेनिन ने तत्कालीन तुर्किस्तान को "ठेठ उपनिवेश" कहा था।* ज़ारशाही के सामंती राज्य बुख़ारा और ख़ीवा भी, व्ला० इ० लेनिन के शब्दों में "बहुत कुछ उपनिवेशों जैसे" ही थे।** बुर्यातिया और याकूतिया उपनिवेश थे। बाल्टिकतटीय गुबेर्नियाओं का शासन रूसी गवर्नरों द्वारा और पोलैण्ड का शासन ज़ार के प्रतिनिधि द्वारा किया जाता था। फ़िनलैण्ड को आधिपत्य में लेने के बाद रूसी सम्राट अपने को फ़िनलैण्ड के महाराजकुमार की संज्ञा से भी पुकारने लगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रूस के बहुत से जन पराश्रित और अपूर्णाधिकार प्राप्त राष्ट्र थे।

रूस के जनगण की औपनिवेशिक स्थिति के संबंध में यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि उनका उत्पीड़न और दमन स्वयं उनके "अपने ही" शोषक तबक़े भी करते थे, जो ज़ारशाही के परम आज्ञाकारी सेवक थे। छोरवर्ती प्रदेशों में स्थानीय जागीरदारों तथा कुलकों (मध्य एशिया में बायों) के अलावा स्थानीय उद्यमपतियों का काफ़ी बड़ा समूह भी पैदा हो चुका था। वे कच्चे माल का प्राथमिक संसाधन करनेवाले उद्यमों, छोटे बिजलीघरों, ख़ानों, आदि के या तो ख़ुद ही मालिक थे या फिर रूसी कारख़ानेदारों के साथ मिलकर उन्हें चलाते थे। ज़ारशाही शासन स्थानीय जागीरदारों का हर तरह से समर्थन करता था। उदीयमान राष्ट्रीय बूर्जुआ वर्ग को भी उसने जनविरोधी नीति के संचालन में अपना सहायक

---

*व्ला० इ० लेनिन : 'आत्मनिर्णय सम्बन्धी बहस का परिणाम' (१९१६)।

**व्ला० इ० लेनिन : 'मज़दूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस में अस्थायी सरकार के प्रति रवैये के बारे में भाषण' (१७ जून, १९१७)।

बना लिया था। विभिन्न जातियों और राष्ट्रों के शिखरस्थ शोषक तबक़े ज़ारशाही के सामाजिक आधार और सहारे का काम करते थे।

ख़ीवा रियासत में तो, जिसकी स्थिति उपनिवेश जैसी थी, ज़ारशाही की मूक स्वीकृति से शोषक वर्ग अपने दास तक रखते थे। यहां दासप्रथा तब तक जारी रही, जब तक ज़ारशाही निरंकुशतंत्र का उन्मूलन न कर दिया गया। ताशक़न्द में १९वीं सदी के उत्तरार्ध तक ग़ुलामों का बाज़ार काम करता था, जहां लोगों को ख़रीदा-बेचा जाता था, रूई और भेड़ों के बदले में उन्हें फ़रोख़्त किया जाता था।

औपनिवेशिक शोषण और राष्ट्रीय उत्पीड़न ने छोरवर्ती इलाक़ों की तो बात ही क्या, सारे देश में भी आर्थिक गतिरोध को और बढ़ाया। आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता राजनीतिक असमानता का पूरक बनी। इसका पता सबसे पहले इस बात से चलता था कि अधिकांश छोरवर्ती इलाक़े उपनिवेशस्वामी रूस के लिए कृषि मालों तथा कच्चे मालों के प्रदायकर्त्ता क्षेत्र, रूसी तथा विदेशी पूंजी के निवेशन के लिए उपयुक्त क्षेत्र और मध्यवर्ती गुबेर्नियाओं की अतिरिक्त आबादी को बसाने लायक क्षेत्र बन गये थे। ज़ारशाही शासन इन इलाक़ों में अधिकाधिक रूसी और कज़ाक कुलक बसाने और उन्हें अपनी महाशक्तिवादी आकांक्षाओं की पूर्ति का विश्वसनीय साधन बनाने की कोशिशें करता था।

अधिकांश छोरवर्ती इलाक़ों में, जिनमें ग़ैर-रूसी जन रहते थे, उद्योग अभी भ्रूणावस्था में ही था। यह सच है कि रूसी साम्राज्य के कतिपय ग़ैर-रूसी इलाक़ों में पूंजीवाद के विकास का स्तर देश के मध्यवर्ती भागों से ऊंचा था। फिर भी इनमें से अधिकांश इलाक़ों में उद्योग के नाम पर कुछ दस्तकारी और अर्धदस्तकारी उद्यम ही थे। इन इलाक़ों को तैयार माल की खपत मंडी बनाये रखने और उनमें राष्ट्रीय सर्वहारा का, जो देश के मध्यवर्ती भागों के मज़दूर वर्ग का वर्ग-बंधु और संघर्ष-साथी बन सकता था, विकास न होने देने की ज़ारशाही शासन की नीति इसका कारण थी।

ग़ैर-रूसी छोरवर्ती इलाक़ों की संपदा को लुटाना भी ज़ारशाही की औपनिवेशिक नीति का एक अंग था। उक्रइना के कोयला और धातुकर्म उद्योग, आज़रबैजान के तेल उद्योग, क़ज़ाख़स्तान की खानों और मध्य

एशिया के कपास सफ़ाई उद्योग विदेशी पूंजीपतियों के हाथों में बेच दिये गये थे।

छोरवर्ती इलाक़ों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन से संबंधित कटु सत्य व्ला० इ० लेनिन के इन शब्दों में स्पष्टतः व्यक्त हुआ है: "वोलोग्दा से उत्तर, रोस्तोव आन दोन और सरातोव से दक्षिण-पूर्व, ओरेनबूर्ग और ओम्स्क से पूर्व और तोम्स्क से उत्तर में ऐसे विशाल इलाक़े फैले पड़े हैं, जिनमें दसियों बड़े सुसंस्कृत राज्य समा सकते हैं। मगर इन सभी इलाक़ों में दादापंथियत, अर्धसभ्यता और असली बर्बरता का राज है।"* सचमुच १९१४-१५ में सारे ज़ारशाही रूस के स्कूलों में सभी बच्चों और किशोरों का पांचवां भाग ही पढ़ता था। देश में १०५ उच्चशिक्षा संस्थाएं थीं। मगर उनमें से आधे से अधिक तो मास्को और पेत्रोग्राद में ही स्थित थीं। उक्रइना में १९ उच्चशिक्षा संस्थाएं थीं। जार्जिया में ऐसी केवल एक संस्था थी और बेलोरूस, आज़रबैजान, आरमीनिया, उज़्बेकिस्तान, क़ज़ाख़स्तान, तुर्कमानिस्तान, क़िर्गिज़स्तान और ताजिकिस्तान में तो एक भी नहीं थी। क्रांति से पहले उज़्बेकों में दो ही व्यक्ति उच्चशिक्षा पा सके थे।

१९१३ के शिक्षा बजट में उस वर्ष प्रति व्यक्ति ८० कोपेक व्यय निर्धारित किया गया था। यह तो सारे देश का औसत था। मगर उज़्बेकिस्तान और तुर्कमानिस्तान में तो क्रमशः २२ और १५ कोपेक प्रति व्यक्ति ही व्यय किये गये। सत्तारूढ़ हलक़ों की ऐसी नीति के परिणामस्वरूप देश की लगभग ५० जातियां अपनी भाषा के लिए कोई लिपि भी विकसित न कर सकीं। मध्य एशिया और क़ज़ाख़स्तान में क्रांति से पहले तक ९८ प्रतिशत स्थानीय आबादी निरक्षर थी और क़िर्गिज़स्तान में तो साक्षरों की संख्या ०.५ प्रतिशत की सीमा भी मुश्किल से पार करती थी। मध्य एशिया और क़ज़ाख़स्तान में स्त्रियां पूर्णतः निरक्षर थीं।

रूस के बहुत से जन अपनी मातृभाषा में न तो किताबें पढ़ पाते थे और न पत्र-पत्रिकाएं हीं। सारे तुर्कमानिस्तान में केवल तीन छोटे-छोटे समाचारपत्र निकलते थे और वे भी रूसी भाषा में और बहुत कम संख्या में।

---

* व्ला० इ० लेनिन: 'जिन्स के रूप में कर की अदायगी। नयी नीति का महत्त्व और उसकी परिस्थितियां' (१९२१)।

ज़ारशाही शासन ग़ैर-रूसी जनों की पृथक राज्य स्थापना की आकांक्षा को भ्रूणावस्था में ही कुचल देता था। इसका एकमात्र अपवाद फ़िनलैण्ड था, जिसे स्वायत्तता प्राप्त थी। ग़ैर-रूसी इलाक़ों के मालिक ज़ार के प्रतिनिधि, गवर्नर-जनरल और उनकी देखरेख में काम करनेवाले विभिन्न दमन तथा उत्पीड़न के निकाय थे।

ग़ैर-रूसी जनों का और अधिक अपमान करने के उद्देश्य से स्वयं उनके और उनके क्षेत्रों के परंपरागत, ऐतिहासिक नामों को बदल दिया जाता था। ज़ारशाही शासक सभी ग़ैर-रूसियों को विजातीय, अर्धसभ्य देसी या घटिया लोग कहते थे।

जनता पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाने के लिए ज़ारशाही प्रतिक्रियावादी धार्मिक और राष्ट्रवादी अंधविश्वासों को बढ़ावा देती थी, विभिन्न जनों के बीच शत्रुता के बीज बोती थी, मारकाट और विनश-अभियान करवाती थी।

ज़ारशाही की महाशक्तिवादी और अंधराष्ट्रवादी नीति और विभिन्न जनों के बीच बने संबंधों का विश्लेषण करके व्ला० इ० लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ज़ारशाही रूस "जनों के लिए जेल" है।* किन्तु साथ ही उन्होंने सगर्व उन शक्तियों की चर्चा भी की, जो राष्ट्रीय उत्पीड़न और विभिन्न जनों के बीच वैमनस्य के ख़ात्मे के लिए लड़ रही हैं। ये शक्तियां थीं बोल्शेविकों और अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों की पार्टी, उसके नेतृत्व में काम करनेवाला मज़दूर वर्ग और सर्वाधिक प्रगतिशील बुद्धिजीवी। रूसी जनता के महान सपूत गेर्त्सेन, जिन्होंने ज़ारशाही के विरुद्ध पोल जनता के संघर्ष का समर्थन किया था, प्रतिभाशाली रूसी कवि पुश्किन और लेर्मोन्तोव, जो काव्य प्रेरणा अकेली रूसी प्रकृति से ही नहीं पाते थे, आरमीनियाई लोककवि सयात-नोवा, जिन्होंने आरमीनियाई, जार्जियाई और आज़रबैजानी जनों की भाषाओं में उत्कृष्ट काव्यकृतियां रचीं और उनकी मैत्री का यशोगान किया था, और दूसरे भी बहुत से लोग, जिनके नाम रूस से बाहर भी जाने जाते हैं, ऐसे ही प्रगतिशील बुद्धिजीवियों की श्रेणी में आते हैं।

ज़ारशाही की रूसीकरण की नीति, विभिन्न जनों के बीच शत्रुता,

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'क्रांतिकारी सर्वहारा और राष्ट्रों का आत्मनिर्णय का अधिकार' (१९१५)।

अलगाव और अविश्वास को बढ़ावा देने की नीति के बावजूद इन जनों के प्रगतिशील प्रतिनिधियों ने उस जेल का घोर विरोध किया, जिसे निरंकुश शासकों ने बनाया और मज़बूत किया था।

हर बहुराष्ट्रिक पूंजीवादी राज्य में जनता का दमन किया जाता है। यहां लोगों को आये दिन नसलवाद, वर्णभेद (नसल के आधार पर लोगों में अन्तर करने की नीति, जिसके फलस्वरूप कुछ जनों को मताधिकार, स्वेच्छया निवास-परिवर्तन के अधिकार, आदि से वंचित कर दिया जाता है), जातीय पृथक्करण (विभिन्न नसलों के लोगों को बलात् अलग रखना, एक ही इलाक़े में न रहने देना, एक ही स्कूल में न पढ़ने देना, इत्यादि), जातिसंहार (नसल, जाति और धर्म के आधार पर कुछ जनसमूहों का पूर्ण सफ़ाया करना), आदि का सामना करना पड़ता है। साम्राज्यवाद नसलवाद और इस तरह की अन्य विचारधाराओं को विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के बीच फूट डालने और अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए इस्तेमाल करता है।

क्या संयुक्त राज्य अमरीका में नीग्रो, रेड इंडियन, प्वेर्टो रिकाई, मेक्सिकी और अन्य अल्पसंख्यक जनों की स्थिति इसका सबूत नहीं है?

उस देश में २.२ करोड़ से अधिक नीग्रो रहते हैं। काली चमड़ीवाले लोगों का वेतन सफ़ेद चमड़ीवाले मज़दूरों के वेतन का औसतन ५३ प्रतिशत और दक्षिणी राज्यों में तो केवल ३०–४० प्रतिशत ही होता है। १६ से २१ वर्ष तक की आयु की ३० प्रतिशत से अधिक नीग्रो लड़कियां और २५ प्रतिशत लड़के बेरोज़गार हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसे हज़ारों रेड इंडियन हैं, जिन्हें औरों जैसे अधिकार नहीं हैं और कुछ ख़ास इलाक़ों (रिज़र्वों) में ही बसने पर मजबूर कर दिया गया है।

संयुक्त राज्य अमरीका को "रुग्ण देश" कहा जाता है। इससे स्वयं अमरीकी नेता भी सहमत हैं, क्योंकि वे लाख कोशिशें करने पर भी आधुनिक साम्राज्यवाद के गढ़, अपने देश के दैनंदिन जीवन के उपरोक्त कटु सत्यों को नहीं छिपा पाते।

पश्चिमी जर्मन पत्रकार आर० वीन्तेर अपनी पुस्तक "अमरीका के दुःस्वप्न। रुग्ण देश के बारे में १८ रिपोर्ताज" में लिखते हैं कि राष्ट्रपति निक्सन एक रुग्ण देश पर शासन कर रहे हैं... एक भी पश्चिमी देश

अपनी आबादी के इतने बड़े भाग को इतनी घोर ग़रीबी में रहने को मजबूर नहीं करता, जितना कि अमरीका।

इसी पुस्तक में हम आगे पढ़ते हैं: "अमरीकी आर्थिक पत्रिका फ़ारचून में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार अच्छा रहने और २५ हज़ार डालर या इससे अधिक सालाना आमदनीवाले अमरीकियों की संख्या १३,७३,००० है। यदि इस बात को ध्यान में रखें कि संयुक्त राज्य अमरीका की कुल आबादी कोई २१ करोड़ है, तो लोगों के मन में असामान्य रूप से जमी हुई यह धारणा कोरी कल्पना ही लगती है कि अमरीका में चारों ओर समृद्धि ही समृद्धि है।"

आर० वीन्तेर अमरीका में नसली भेदभाव और नीग्रो लोगों की उत्पीड़ित हालत से संबंधित अनगिनत तथ्य पेश करते हैं। वह लिखते हैं: "गेच* दक्षिणी कैरोलाइना के तटवर्ती क्षेत्र में स्थित बोफ़ोर्ट डिस्ट्रिक्ट में प्रैक्टिस करते थे। सवान्ना और कोलंबिया के संभ्रांत नागरिक यहां हिल्टन की खाड़ी के तट पर अपनी छुट्टियां बिताते हैं। मगर इस अमरीका से डाक्टर गेच का कोई संबंध नहीं था। वह दूसरे ही अमरीका में काम करते थे। जहां भरपेट भोजन न मिलने और खटमलों, मच्छरों, आदि के दंशों से एक के बाद एक करके आठ नीग्रो बच्चे दम तोड़ रहे थे, वह वहां थे। डाक्टर गेच ने ब्लफ़टोन में नीग्रो आबादी की सामूहिक डाक्टरी जांच में हिस्सा लिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जांच किये हुए लोगों में से सत्तर प्रतिशत कृमिरोग से पीड़ित हैं।

"'अगर आठ श्वेत बच्चे मरते,' उन्होंने कटुतामिश्रित स्वर में कहा, 'तो देश में हलचल ज़रूर मच जाती।'"

श्वेत और अश्वेत अमरीका के बीच खाई घटने के बजाय, उल्टे, बढ़ती ही जा रही है। अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयोग ने १९६८ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसने सारे अमरीकी समाज को हिलाकर रख दिया। "हमारा देश", रिपोर्ट में कहा गया था, "श्वेत और अश्वेत, दो समाजों की ओर, बंटे हुए और असमान समाजों की ओर बढ़ता जा रहा है।"

---

*गेच वह डाक्टर हैं, जो दक्षिणी केरोलाइना राज्य की यात्रा में सेनेटर एर्नेस्ट हालिंग्स के साथ गये थे।

अमरीकी नसलवादी नागरिक अधिकार कानूनों की खुलेआम अवहेलना करते हैं। अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय स्कूलों में श्वेत और अश्वेत बच्चों की सहशिक्षा से संबंधित कानून को १६५४ में जाकर ही स्वीकृति दे पाया। यह कहा गया कि स्कूलों में विपृथक्करण (श्वेत और अश्वेत बच्चों के साथ-साथ शिक्षा पाने) से विभिन्न रंगों की चमड़ीवाले अमरीकी एक दूसरे के निकट आयेंगे, उन्हें बचपन से ही एक दूसरे को जानने-समझने में मदद मिलेगी। किन्तु यह कानूनी गारंटी भी कागज़ पर ही धरी रह गयी।

विपृथक्करण के फलस्वरूप १६६४–१६६७ की अवधि में केवल ६.४ प्रतिशत नीग्रो बच्चों को श्वेत बच्चों के साथ पढ़ने का अवसर मिल पाया। शेष पहले की तरह ही नीग्रो बस्तियों के स्कूलों में पढ़ते रहे। इन स्कूलों की शिक्षा समाप्त करने पर औसत नीग्रो बच्चा अपने श्वेत समवयस्कों से फिर भी ३–४ वर्ष पिछड़ा होता है, जिसके परिणाम उसे जीवनपर्यन्त भुगतने पड़ते हैं।

अक्तूबर, १६६६ में सर्वोच्च न्यायालय ने राजकीय स्कूलों में पृथक्कृत शिक्षा की व्यवस्था तुरंत ख़त्म करने का आदेश दिया। मगर अनेक राज्यों के अधिकारी आज तक इस आदेश को क्रियान्वित करने से इन्कार करते आ रहे हैं।

१६७१ के शिक्षावर्ष के आरंभ में अलाबामा राज्य के गवर्नर वालेस ने एक आदेश जारी किया, जिसके अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत, "केवल श्वेतों के लिए" और "केवल अश्वेतों के लिए" स्कूल फिर से खोले गये। इसके अलावा वालेस ने स्कूली बसों में नीग्रो बच्चे लाने-ले जाने का व्यय राज्य प्रशासन द्वारा वहन किये जाने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। इस संबंध में स्वयं संघीय सरकार का क्या रुख़ था, इसका पता भूतपूर्व राष्ट्रपति निक्सन के प्रेस सचिव रोनाल्ड ज़िगलर के निम्न वक्तव्य से चलता है: "मिस्टर वालेस के निर्णयों के विरुद्ध क़दम उठाने का ह्वाइट हाउस का कोई इरादा नहीं है, क्योंकि उनसे क़ानून का उल्लंघन नहीं होता।"

मिसिसिपी राज्य के अधिकारियों ने स्कूलों में विपृथक्करण करने की घोषणा की थी। मगर जब सेनेटर वाल्टर मोंडेल ने इस संबंध में पूछताछ की, तो पता चला कि सहशिक्षावाले स्कूलों में १६,००० अश्वेत

बच्चों के साथ केवल ११६ श्वेत बच्चे पढ़ते थे। इस राज्य के गवर्नर बेल विलियम्स ने तो १९७१ के शिक्षावर्ष में जैक्सन डिस्ट्रिक्ट के उन स्कूलों को वित्तीय सहायता ही बंद कर दी, जिनमें सहशिक्षा लागू की गयी थी।

संयुक्त राज्य अमरीका के स्कूलों में ऐसे दृश्य भी देखने को मिलते हैं: क्लास ख़त्म होने की घंटी बज गयी है। मगर वह श्वेत बच्चों के लिए ही है। अश्वेत बच्चों को तब तक इन्तज़ार करना होगा, जब तक श्वेत बच्चे "अपने" क्लासरूमों से (वह भी विपृथक्कृत स्कूलों में!) बाहर नहीं निकल जाते, "अपने" खेलकूद हालों में खेलने नहीं चले जाते, "अपनी" कैंटीनों में खाने नहीं बैठ जाते या "अपनी" बसों में नहीं बैठ जाते। अश्वेत बच्चों के लिए घंटी इसके बाद ही बजती है।

"मुझपर थूकते थे, स्याही और चबाये हुए काग़ज़ फेंकते थे," दक्षिणी कैरोलाइना राज्य के एक विपृथक्कृत स्कूल की एक नीग्रो छात्रा ने बताया। "मैं इतनी तंग आ गयी कि मैंने अपने कुछ सहपाठियों को आदमी समझना ही छोड़ दिया। मैंने आज तक असली मानवीय परस्परसंबंध नहीं देखे हैं।"

दक्षिणी कैरोलाइना राज्य की ही एण्डरसन काउण्टी के एक और सहशिक्षावाले स्कूल का उदाहरण लें। क्लास में डेस्कों की तीन क़तारें हैं। बीच की क़तार ख़ाली है और शेष दो में से एक श्वेत बच्चों के लिए है और दूसरी अश्वेत बच्चों के लिए। टेक्सास राज्य के कैट्रिज नगर के एक स्कूल में अध्यापकों ने क्लास में ब्लैकबोर्ड को यों रखा कि नीग्रो बच्चों और श्वेत बच्चों के बीच दीवार सी बन जाये। अक़सर ऐसा भी होता है कि हथियारबंद नसलवादी स्कूल से लौटते नीग्रो बच्चों पर दिन-दहाड़े हमला कर देते हैं।

संयुक्त राष्ट्र की नसली भेदभाव उन्मूलन समिति की सितंबर, १९७१ की बैठक में लैटिन अमरीकी देश पनामा के प्रतिनिधि ने बताया था कि संयुक्त राज्य अमरीका पनामा नहर के क्षेत्र में भी नसलवाद और भेदभाव के बीज बो रहा है। पनामा सरकार की सूचना के अनुसार देश में दो वेतनमान हैं—एक पनामियों के लिए और दूसरा उत्तरी अमरीकी नागरिकों के लिए।

संयुक्त राज्य अमरीका ने "स्वतंत्रता की रक्षा" की झूठी आड़ में हिन्दचीन में जातिसंहार की नीति अपनायी। एक अमरीकी जनरल के ही शब्दों में, उत्तरी वियतनाम पर घोर अमरीकी बमबारी का एक लक्ष्य यह था कि इस देश को पाषाण युग में लौटा दिया जाये।

वियतनाम में जातिसंहार और सर्वक्षार की अमरीकी नीति पर टिप्पणी करते हुए शिकागो से निकलनेवाली पत्रिका 'बुलेटिन आफ़ एटमिक साइंटिस्ट्स' ने लिखा था: "अमरीकी सेनाएं प्रकृति को विनष्ट करने के दो विशेष कार्यक्रमों पर अमल कर रही हैं। पहले, निष्पत्रकों (पेड़ों को पत्तारहित बनानेवाले रसायनों) के प्रयोग के कार्यक्रम को 'आपरेशन रैंच-हैण्ड' नाम दिया गया है। जंगलों पर ऐसे रसायन छिड़कने से प्राय: पेड़ भी नष्ट हो जाते हैं। दूसरा कार्यक्रम खड़ी फ़सलोंवाले खेतों पर आसमान से वनस्पतिनाशक रसायन छिड़कने से संबंधित है, ताकि राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के नियंत्रण में स्थित इलाक़ों के लोगों और सैनिकों को खाद्यान्नों से वंचित किया जाये।

"निष्पत्रक और वनस्पतिनाशक रसायन ऐसे इलाक़ों पर छिड़के जा रहे हैं, जिन्हें सैनिक 'लक्ष्य' कतई नहीं कहा जा सकता। मिसाल के लिए, प्रतिरक्षा मंत्रालय दावा करता है कि दक्षिणी वियतनाम में रबड़ के बाग़ान 'संयोगवश' ही विषाक्त हुए, मगर निष्पत्रक रसायनों के प्रयोग से इस देश के रबड़ उत्पादन को भारी हानि हुई है: उत्पादन ४५ प्रतिशत कम हो गया है। यही बात कंबोडिया में भी हुई है।

"कृषि फ़सलों को नष्ट करने, किसानों को ज़बर्दस्ती शरणार्थी शिविरों में बसाने, नपाम से खेतों में खड़ी फ़सलें जलाने और लोगों द्वारा छिपाकर रखी हुई रसद को नष्ट करने की संयुक्त राज्य अमरीका की नीति और बड़े पैमाने पर बलात् सैनिक भरती का नतीजा यह हुआ है कि कृषि का उत्पादन एकाएक बहुत कम हो गया है। १९५९ में दक्षिणी वियतनाम ने, जिसे एशिया का 'चावल भंडार' कहा जाता था, २,४६,००० टन चावल निर्यात किया था। १९६८ में उसे ८,५०,००० टन चावल आयात करना पड़ा, जिसमें से ९० प्रतिशत अमरीका से आया।"

पत्रिका ने आगे लिखा था:

"'संसाधन नाश' का कार्यक्रम उन दक्षिणी वियतनामियों के लिए भी घातक है, जो अभी पैदा नहीं हुए हैं। कतिपय रसायनों के

विरूपोत्पादक (गर्भस्थ भ्रूण का विरूपण करनेवाले) प्रभाव की ओर विश्व का ध्यान इसके बाद ही खिंचा, जब यह मालूम हुआ कि विकलांग बच्चों के पैदा होने का कारण वनस्पतिनाशक रसायन हैं। सैगोन से निकलनेवाला समाचारपत्र 'तिन सांगा' लिखता है कि १९६९ के पहले छह महीनों में एक ही जच्चाघर में ४९ स्त्रियों ने आकृतिहीन मांस के लोथड़े जने हैं।"

संयुक्त राज्य अमरीका और कतिपय अन्य पश्चिमी देश दक्षिण अफ़्रीकी गणराज्य, दक्षिणी रोडेशिया और इज़रायल की नसलवादी औपनिवेशिक सरकारों का समर्थन करते हैं।

पश्चिमी जर्मनी से निकलनेवाली पत्रिका 'श्पीगेल' ने दक्षिण अफ़्रीकी नसलवाद के बारे में १९७१ में लिखा था, "दक्षिण अफ़्रीका में ऐसा शासन है, जिसकी दुनिया में और कोई मिसाल नहीं। इसे नसली तानाशाही का राज्य, या अगर इससे भी बेहतर शब्द इस्तेमाल करें तो जेल राज्य कहा जा सकता है...

"दक्षिण अफ़्रीका में जिसकी भी चमड़ी काली है, वह जीवनपर्यन्त अधिकारवंचित रहता है। गोरा आदमी जहां उसे भेजे, उसे वहां जाना होगा, जो काम वह दे, उसे करना होगा। काले आदमी को विरोध करने का हक़ नहीं है।

"दक्षिण अफ़्रीका में गोरे ही देश की राजनीति तय करते हैं। अर्थव्यवस्था, प्रशासन, अदालतें, सेना, आदि सब उनके हाथों में हैं...

"क्रय क्षमता की दृष्टि से सोने और हीरे की खानों में काम करनेवाले अफ़्रीकियों का मेहनताना आज भी उसी स्तर पर है, जिसपर कि १९११ में था।

"क़ानून और राज्य श्वेत अल्पसंख्यकों द्वारा अश्वेत बहुसंख्यकों का शोषण उचित ठहराते हैं। गोरों द्वारा निर्मित क़ानूनों के अनुसार वे पद और पेशे गोरों के लिए ही रिज़र्व हैं, जिनके लिए उच्च योग्यता की ज़रूरत होती है और जिनमें तनख़्वाह अच्छी मिलती है।

"जिन अफ़्रीकियों को कहीं काम नहीं मिल सकता, उन्हें विशेष रिज़र्वों में भेज दिया जाता है, जिन्हें होमलैण्ड या बन्तूस्तान कहते हैं। डेढ़ करोड़ अफ़्रीकियों के हिस्से में देश की कुल १३.७ प्रतिशत भूमि आती

है। शेष ८६.३ प्रतिशत गोरे लोगों के हाथों में हैं जिनकी संख्या केवल ४० लाख है। बन्तूस्तानों में लगभग कोई उद्योग नहीं हैं और न खनिजों के स्रोत ही हैं।

"दक्षिण अफ़्रीका के श्वेत इलाक़ों में काम खोजनेवाले अफ़्रीकियों को सरकार द्वारा दिये जानेवाले किसी भी काम को स्वीकार करना होता है। ऐसा न करने पर वे रिज़र्वों में भेजे जा सकते हैं। अफ़्रीकियों के लिए श्रम क़रार का उल्लंघन फ़ौजदारी जुर्म है न कि दीवानी जुर्म। हड़ताल करनेवाले को तीन साल तक की क़ैद या ४००० मार्क तक का जुर्माना हो सकता है।

"शहरों में रहनेवाले १६ वर्ष से अधिक आयु के हर अफ़्रीकी के लिए सदा अपने पास पहचानपत्र रखना अनिवार्य है। यह पहचानपत्र भी तभी वैध होता है जब गोरा मालिक, जिसके यहां वह अफ़्रीकी काम करता है, उसे हर महीने प्रमाणित करे।

"दक्षिण अफ़्रीकी गणराज्य के नगरों में हर साल १५ लाख से अधिक काले लोग इसीलिए गिरफ़्तार किये जाते हैं कि पहचानपत्र दिखाने की मांग किये जाने पर वे पहचानपत्र तुरंत नहीं पेश कर पाते। पुलिस को इसका विश्वास दिलाना निरर्थक होता है कि वह घर पर छूट गया है। सड़क पर पहचानपत्र के बिना पकड़े जाना अफ़्रीकियों के लिए फ़ौजदारी जुर्म है, जिसकी सज़ा भारी जुर्माना तथा कम से कम २० दिन की क़ैद या किसी गोरे के फ़ार्म में ७० दिन का बलात् श्रम (बेगार) है...

"सरकार हर साल कोई १ लाख अफ़्रीकियों को उन इलाक़ों से खदेड़ देती है, जिन पर गोरे लोग दावा करते हैं। इस तरह विस्थापित अफ़्रीकियों को अल्पविकसित और वैसे भी खचाखच भरे रिज़र्वों – बन्तूस्तानों – में भेजा जाता है...

"बन्तूस्तान या होमलैण्ड कहलायी जानेवाली इन खुली जेलों में मुख्यतः उन अफ़्रीकियों को भेजा जाता है, जो उद्योगों में या गोरों के फ़ार्मों में काम नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, ये अफ़्रीकी बूढ़े, अपाहिज, विधवाएं या दूध पीते बच्चोंवाली स्त्रियां ही होती हैं...

"इस व्यवस्था (रंगभेद की व्यवस्था – अ० जे०) के लिए कोई ख़तरा पैदा न हो और अफ़्रीकी लोग अपने साथ अच्छे व्यवहार की मांग करने की बात सोच भी न पायें, इस उद्देश्य से सरकार अफ़्रीकियों के

लिए शिक्षा पाने के अवसर सुनियोजित ढंग से सीमित करती जा रही है। दक्षिण अफ़्रीका की सरकार जहां स्कूल में एक गोरे बच्चे की शिक्षा पर प्रतिवर्ष कोई ८०० मार्क ख़र्च करती है, वहां एक काले स्कूली बच्चे की शिक्षा पर केवल ८० मार्क ख़र्च किये जाते हैं।

"गोरों के बच्चे स्कूलों में मुफ़्त शिक्षा पा सकते हैं। मगर कालों के बच्चों को आरंभिक कक्षाओं में ८८ मार्क और माध्यमिक स्कूल की बड़ी कक्षाओं में ३३० मार्क प्रतिवर्ष तक शिक्षाशुल्क देना होता है। यह एक अफ़्रीकी की औसत मासिक आमदनी के बराबर है। इसके अलावा अफ़्रीकी बच्चों को कपड़ों, किताबों, आदि का भी ख़र्च देना होता है...

"कोई भी काला आदमी अपने को ऐसी व्यवस्था के अनुकूल ढालने पर भी अपने हीन दर्जे से ऊपर नहीं उठ सकता।"

इन लोमहर्षक तथ्यों पर टिप्पणी करने की शायद ही कोई ज़रूरत है।

नसलवाद, भेदभाव और पृथक्करण इज़रायल के सत्ताधारी हल्क़ों की नीति के भी अभिन्न अंग हैं। इस नीति के शिकार अरब मूलनिवासी ही नहीं, बल्कि एशिया और अफ़्रीका के कई देशों से आये यहूदी आप्रवासी –सेफ़ार्द– भी बनते हैं।

इज़रायल की यहूदी आबादी में सेफ़ार्दों का हिस्सा ६० प्रतिशत होने के बावजूद उन्हें दूसरी श्रेणी का नागरिक माना जाता है। वे बहुत ही कम वेतनवाला गंदा और भारी काम ही कर सकते हैं। उन्हें सबसे बाद में काम पर लिया जाता है और सबसे पहले काम से निकाला जाता है। इज़रायली नगरों की गंदी बस्तियों के निवासी वे ही हैं। "गोरे यहूदियों" और सेफ़ार्दों के बीच विद्यमान असमानता के चिह्न क़दम-क़दम पर दिखायी देते हैं।

एक फ़्रांसीसी पत्रिका में इज़रायली लेखक केनान लिखते हैं, "सेफ़ार्द ग़रीबी और अधिकारहीनता से ग्रस्त हैं। ऐसी बात नहीं कि यह संक्रमणकालीन स्थिति हो। बहुत करके यह उस प्रवृत्ति को ही दिखाती है, जो देश में जड़ें जमा चुकी है।"

'डेली टेलीग्राफ़ मैगज़ीन' में प्रकाशित आंकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश सेफ़ार्द परिवारों की आमदनी इतनी कम है कि उन्हें ग़रीबों की श्रेणी में ही गिना जा सकता है। वे पश्चिमी यूरोप या अमरीका से आये

यहूदियों के मुकाबले औसतन २०–३० प्रतिशत कम कमाते हैं। हर तीन सेफ़ार्द परिवारों में से केवल एक को सरकार से कोई अतिरिक्त माली सहायता प्राप्त होती है। इन परिवारों के ८० प्रतिशत बच्चे माध्यमिक शिक्षा पूरी किये बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं।

अपनी विशाल संख्या के बावजूद सेफ़ार्दो के, इज़रायल की संसद में, केवल १८ प्रतिनिधि थे, जबकि संसद की कुल सदस्य संख्या १२० है।

इज़रायल के नृजातीय-अधिश्रेणिक सोपान में भारत, चीन और जापान से आये यहूदी सबसे निचली सीढ़ी पर स्थित हैं। इस देश में नसलवाद की एक अभिव्यक्ति यह भी है कि यहां नीग्रो यहूदियों को बिल्कुल नहीं बसने दिया जाता।

नसलवाद के विरुद्ध व्यापक रूप से संघर्ष किया जाने लगा है। नवंबर, १९७५ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ज़ियोनवाद की भर्त्सना की और उसे नसलवाद का एक घृणित रूप बताया।

१९६९ में मास्को में हुए कम्युनिस्ट तथा मज़दूर पार्टियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने अपने घोषणापत्र में कहा था कि "व्यापक जनसमुदाय नसलवाद को ठुकराते हैं और उन्हें उसके विरुद्ध सक्रिय संघर्ष के लिए लामबंद किया जा सकता है। अपनी कार्रवाइयों के दौरान वे जान जायेंगे कि नसलवाद का उन्मूलन साम्राज्यवाद और उसके वैचारिक आधारों के विरुद्ध संघर्ष से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब तक पूंजीवाद मौजूद है, तब तक राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रीय असमानता का ख़ातमा नहीं हो सकता।

५. राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान का वैज्ञानिक कार्यक्रम

राष्ट्रीय प्रश्न सदियों से एक सबसे जटिल प्रश्न माना जाता रहा है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न पर आधारित समाज में उसे हल नहीं किया जा सकता।

बहुत से पूंजीवादी सिद्धान्तकार "बांटो और राज करो" के नारे तले शुरू किये गये जूलियस सीज़र के विजयाभियानों, ग़ाज़ियत के नाम पर छेड़े गये युद्धों, आदि ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं। वे ऐसे फ़ासिस्ट सिद्धान्तों का सहारा लेते हैं, जिनके आधार में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों को जीतने और ख़त्म करने का विचार निहित है। इस तरह वे सिद्ध करना चाहते हैं कि राष्ट्रीय प्रश्न कभी हल नहीं हो सकता और जनगण के बीच शांतिमय संबंध कभी नहीं बन सकते।

किन्तु एक ऐसी विचारधारा भी है, जो कहती है कि राष्ट्रीय प्रश्न हल हो सकता है। यह विचारधारा है मार्क्सवाद-लेनिनवाद। इसी विचारधारा का अनुगमन करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने नेता व्ला० इ० लेनिन के निदेशन में राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में अपनी नीति निश्चित की और उसके समाधान का कार्यक्रम बनाया। लेनिनवाद की राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी प्रस्थापनाओं का व्ला० इ० लेनिन द्वारा मानव ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में की गयी महान खोजों से कम महत्त्व नहीं है।

राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी क्रांतिकारी लेनिनवादी कार्यक्रम का सार यह है: राष्ट्रीय प्रश्न राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रीय असमानता से मेहनतकशों को मुक्ति दिलाने का प्रश्न है; राष्ट्रीय प्रश्न का एक सुनिश्चित वर्गीय आधार है और उसे ठीक से समझने तथा उसका उचित हल ढूंढ़ने के लिए पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि कौन से वर्ग अन्य राष्ट्रों का उत्पीड़न करना चाहते हैं और कौन से वर्ग उनकी मुक्ति में रुचि रखते हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की पचासवीं वर्षगाठ की तैयारियों से संबंधित प्रस्ताव में कहा गया है, "मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने विश्व के क्रांतिकारी रूपान्तरण में राष्ट्रीय प्रश्न के स्थान तथा भूमिका को उजागर किया और दिखाया कि उसका समाधान सर्वहारा के वर्ग संघर्ष तथा समाजवाद के हितों पर निर्भर है।"

जैसा कि राष्ट्रों के विकास के नियम और उसकी दो प्रवृत्तियों से ज़ाहिर है, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का उत्पीड़न अपने राज्य की सीमाओं से बाहर पूंजीवादी मंडी हासिल करने के प्रयासों का, यानी पूंजीवादी विस्तारवाद और अन्य राष्ट्रों के पराधीनीकरण का परिणाम है। अतः बूर्जुआ वर्ग सदा राष्ट्रीय उत्पीड़न में रुचि रखता है। इस उत्पीड़न को ख़त्म करने के लिए ज़रूरी है कि पहले बूर्जुआ वर्ग को सत्ताच्युत किया जाये। इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्रीय उत्पीड़न के पीछे वस्तुतः वर्गीय उत्पीड़न ही छिपा हुआ है।

राष्ट्रीय उत्पीड़न का अन्त सबसे अधिक कौनसा वर्ग चाहता है? सर्वहारा। एक वर्ग के रूप में उसके लिए हर तरह का उत्पीड़न बिराना है। वह खुद ही पूंजी के उत्पीड़न और शोषण का शिकार बनता है। राष्ट्रीय उत्पीड़न का ख़ात्मा उत्पीड़ित राष्ट्रों की अधिकांश जनता भी चाहती है।

राष्ट्रीय प्रश्न के समाधानविषयक क्रांतिकारी कार्यक्रम का सबसे मुख्य मुद्दा है सभी राष्ट्रों की पूर्ण समानता की मांग, चाहे वे छोटे हों या बड़े, पिछड़े हों या विकसित, गोरे हों या काले और चाहे किसी भी धर्म का पालन क्यों न करते हों। राष्ट्रों की पूर्ण समानता का अर्थ यह भी है कि यूरोपीयों और एशियाइयों, गोरों और कालों, आदि को एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा न किया जाये।

राष्ट्रों की समानता उनके स्वयं अपना भाग्यनिर्णय कर पाने की सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है। व्ला० इ० लेनिन ने यह मार्क्सवादी नारा पेश किया था और राष्ट्रवादियों के हमलों के बावजूद उसपर डटे रहे थे कि कोई भी राज्य क्यों न हो, उसमें शामिल सभी राष्ट्रों और जातियों को आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना चाहिये। सवाल सांस्कृतिक आत्मनिर्णय का ही नहीं, अपितु राजनीतिक आत्मनिर्णय का, यानी अलग होकर अपना स्वतंत्र राज्य क़ायम करने का अधिकार पाने का भी है। लेनिनवाद की इस आधारभूत प्रस्थापना को यों सूत्रबद्ध किया जाता है: अलग होकर अपना स्वतंत्र राज्य क़ायम करने की हद तक आत्मनिर्णय का राष्ट्रों का अधिकार।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद समझता है कि स्वयं राष्ट्र को ही यह अधिकार है कि वह निर्बाध रूप से, कहीं से भी किसी तरह के दबाव के बिना, अपने भाग्य का निर्णय करे, अर्थात् यह तय करे कि उसे किन्हीं समानता सिद्धान्तों के आधार पर केन्द्रीकृत जनवादी राज्य के दायरे में रहना है या उससे निकलकर अपने अलग स्वतंत्र राज्य की स्थापना करनी है। इस संबंध में व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "हम, सर्वहारा पार्टी के लोगों को जनता के आत्मनिर्णय पर बाहर से **बलप्रयोग द्वारा या अनुचित ढंग से प्रभाव डालने के हर प्रयत्नों का** सदा और बिलाशर्त **विरोध** करना चाहिये।"*

बोल्शेविकों ने राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार की जो मांग की थी, उसकी पृष्ठभूमि रूस में राष्ट्रीय समस्या के विकास से संबंधित निम्न ठोस तथ्यों ने तैयार की थी: देश में बहुत से राष्ट्रों और जातियों की मौजूदगी; विशेषत: ग़ैर-रूसी इलाक़ों में ऐसे कई राष्ट्रों और जातियों की मौजूदगी, जो आर्थिक, रहन-सहनसंबंधी और अन्य परिस्थितियों को देखते हुए एक दूसरे से बहुत भिन्न थे; अधिकांश ग़ैर-रूसी राष्ट्रों और जातियों की उत्पीड़ित स्थिति; उत्पीड़न के विरुद्ध और जनवादी जनतंत्र एवं समाजवाद के हेतु संघर्ष के लिए यथासंभव व्यापक आधार पर सभी राष्ट्रों तथा जातियों के बीच घनिष्ठ एकजुटता की आवश्यकता। ये तथ्य

---

*व्ला० इ० लेनिन: आरमीनियाई सामाजिक-जनवादी संघ के घोषणापत्र के बारे में (१९०३)।

सिर्फ़ रूस के लिए ही लाक्षणिक नहीं थे। इसलिए आत्मनिर्णय का नारा रूसी ही न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय नारा भी बन गया।

इस नारे की खूबियां निम्न थीं: वह इस प्रकार के संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता था कि कोई एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है और इस तरह उसने विभिन्न राष्ट्रों के बीच परस्पर विश्वास के पैदा होने तथा अन्ततः उनके संघबद्ध होने के लिए आधार तैयार किया; वह साम्राज्यवादियों का पर्दाफ़ाश करता था, जो उत्पीड़ित जनगण को साम्राज्यवादी राज्य के ही दायरे में बांधे रखना चाहते थे; उसका बहुत बड़ा क्रांतिकारी महत्त्व था और आज भी है।

राष्ट्रों के आत्मनिर्णयसंबंधी प्रश्न की वैज्ञानिक, मार्क्सवादी प्रस्तुति राष्ट्रों के उत्पीड़न तथा दमन के उन्मूलन के लिए, विभिन्न जनों के बीच वैमनस्य तथा अविश्वास के ख़ात्मे के लिए, उनके बीच मैत्री संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए संघर्ष करने से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है।

जहां तक अलग होने की मांग का सवाल है, तो व्ला० इ० लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टी ने बार-बार स्पष्ट किया था कि इसका अर्थ यह कतई नहीं कि वे अलग होने की हर राज्य की आकांक्षा का बिलाशर्त समर्थन करेंगे। इस नारे के साकार बनने की एक निर्णायक शर्त यह है कि उसे सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के हितों, समाजवादी क्रांति के निमित्त किये जानेवाले संघर्ष के हितों के अनुरूप होना चाहिये। दूसरे शब्दों में, अलग होने का सवाल हर राष्ट्र या जाति के मामले में उसकी विशिष्टताओं को देखते हुए और इस आधार पर हल किया जाता है कि उस राष्ट्र या जाति का अलग होना मेहनतकशों की वर्गीय आत्मचेतना जगने में, शोषण तथा शोषकों के विरुद्ध उनके संघर्ष में और, अन्ततः, सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना तथा विश्व सर्वहारा क्रांति की विजय में कहां तक सहायक होगा।

व्ला० इ० लेनिन ने बल देते हुए कहा था कि अधिकांश जनसामान्य बड़े राज्य के आर्थिक, राजनीतिक, सैनिक तथा अन्य फ़ायदों को, शक्तिशाली तथा बड़े राज्य में साथ-साथ रहने के फ़ायदों को अपने रोज़मर्रे के अनुभव से जानते हैं। इसलिए वे अलग होने की बात तभी उठायेंगे, जब देखेंगे कि राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रीय कलह की वजह से एक राज्य

के दायरे में संयुक्त जीवन असह्य बन गया है और आर्थिक संबंधों के विकास, अर्थात् राष्ट्र के आर्थिक उत्थान में बाधा पड़ रही है।*

फिर इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि राज्य जितना ही जनवादी होगा, उसमें शामिल राष्ट्रों और जातियों में अलग होने की आकांक्षा उतनी ही कम और विरली होगी। मार्क्सवाद-लेनिनवाद मानता है कि केन्द्रीकृत बड़ा राज्य भावी समाजवादी एकता की दिशा में बढ़ाया हुआ एक विराट ऐतिहासिक क़दम है।

राष्ट्रों के जनवादी सन्निकटन के लक्ष्यों को आधार मानते हुए व्ला० इ० लेनिन ने अलग होने के प्रश्न को अन्ततः यों सूत्रबद्ध किया था: "हमने सभी उत्पीड़ित देशों के, जिनमें उपनिवेश भी सम्मिलित हैं, समस्त उत्पीड़ित वर्गों को यह सलाह दी है और बराबर देते भी रहेंगे कि आप हमसे अलग **मत** हों।"** किन्तु जहां कहीं भी लेनिन ने बड़े राज्य के फ़ायदों की – स्पष्टतः उन फ़ायदों की, जो सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के हितों और उसके सत्ता में आने के लक्ष्य की पूर्त्ति में सहायक हो सकते हैं – चर्चा की है, वहां उन्होंने सभी राष्ट्रों को अलग होने का अधिकार देने की मांग भी अवश्य उठायी है। यह सिद्ध करता है कि कम्युनिस्टों की पार्टी ने अपने कार्यक्रम के नारे "अलग होने की हद तक राष्ट्रों का आत्मनिर्णय का अधिकार" को कभी नहीं त्यागा है।

आत्मनिर्णय के अधिकार से संबंधित कार्यनीति के प्रश्न को लेनिन ने जिस प्रकार पेश किया, उसकी भी वैचारिक और व्यावहारिक पृष्ठभूमि यही है। यदि उत्पीड़ित राष्ट्र या राष्ट्रों के राजनीतिक स्वाधीनता के अधिकार के लिए लड़ना सत्तारूढ़ राष्ट्र के कम्युनिस्टों के लिए ज़रूरी है, तो पराधीन (उत्पीड़ित) राष्ट्र के कम्युनिस्टों के लिए भी ज़रूरी हो जाता है कि वे सभी राष्ट्रों के सर्वहारा के साथ संघ बनाने की आज़ादी के लिए मांग करें।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद राष्ट्रीय प्रश्न को अपने आपमें मुख्य नहीं मानता। एक ओर वह मुख्य प्रश्न – सर्वहारा क्रांति तथा सर्वहारा अधि-

---

* व्ला० इ० लेनिन: 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' (१६१४)।

** व्ला० इ० लेनिन: 'मार्क्सवाद का विकृत रूप और "साम्राज्यवादी अर्थवाद"' (१६१६)।

नायकत्व के प्रश्न — के सामने गौण महत्त्व रखता है* और दूसरी ओर वह क्रांति के विकास और उपनिवेशों तथा पराधीन देशों की स्वाधीनता की समस्या का अंग है। दूसरे शब्दों में इसी को यों कहा जा सकता है: राष्ट्रीय प्रश्न समाज के क्रांतिकारी रूपान्तरण के साथ जुड़ा हुआ है।

राष्ट्रीय प्रश्न के द्वन्द्वात्मक रूप से परस्परसंबद्ध इन दो पहलुओं का क्या अर्थ है?

राष्ट्रीय और औपनिवेशिक प्रश्नों को पूंजी की सत्ता से मुक्ति पाने के कार्यभारों से अलग नहीं किया जा सकता। सर्वहारा क्रांति की विजय और पूंजी की सत्ता का उन्मूलन ही राष्ट्रीय प्रश्न को हल करने की संभावना देते हैं। किन्तु साथ ही क्रांति में सर्वहारा की विजय तब तक स्थायी नहीं बन सकती, जब तक समान अधिकारों से वंचित राष्ट्रों और उपनिवेशों को साम्राज्यवाद के उत्पीड़न से मुक्त न करवाया जाये।

औपनिवेशिक प्रश्न के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होने के कारण राष्ट्रीय प्रश्न अन्ततः राष्ट्रीय-औपनिवेशिक प्रश्न बन जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि दूसरे इंटरनेशनल के काल में राष्ट्रीय प्रश्न को आम तौर पर सभ्य राष्ट्रों से संबंधित समस्याओं का ही एक अंग माना जाता था। दूसरे इंटरनेशनल के कर्णधार नहीं समझ पाते थे कि साम्राज्यवाद के उत्पीड़न से एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के औपनिवेशिक जनों को मुक्ति दिलाये बिना स्वयं यूरोप में राष्ट्रीय उत्पीड़न ख़त्म नहीं किया जा सकता और यह कि इन दोनों के बीच अभिन्न संबंध है।

सामाजिक सुधारवाद से मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अन्तर इस बात में है कि वह, यानी मार्क्सवाद-लेनिनवाद, सर्वहारा अधिनायकत्व के हेतु किये जानेवाले संघर्ष को उपनिवेशों की जनता के मुक्ति संघर्ष से जुड़ा हुआ मानता है। प्रश्न के ऐसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक निरूपण ने उपनिवेशों की जनता के संघर्ष का उपनिवेशस्वामी देशों के सर्वहारा के संघर्ष के साथ समन्वय काफ़ी आसान बना दिया।

व्ला० इ० लेनिन ने उत्पीड़क और उत्पीड़ित राष्ट्रों में विश्व के

---

*व्ला० इ० लेनिन ने ज़ोर देते हुए कहा था: "हम सर्वहारा के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं।" देखिये व्ला० इ० लेनिन: राष्ट्रीय प्रश्न के सम्बन्ध में आलोचनात्मक अभ्युक्तियां (१९१३)।

बंटवारे के सामाजिक परिणामों के विश्लेषण पर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने बताया कि इन परिस्थितियों में उत्पीड़ित राष्ट्रों की सभी जनवादी शक्तियों का सर्वहारा के गिर्द एकजुट होना बहुत ज़रूरी है।

राष्ट्रीय (राष्ट्रीय-औपनिवेशिक) प्रश्न किसान प्रश्न के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। बात यह है कि उत्पीड़ित राष्ट्रों की अधिकांश आबादी किसान है, क्योंकि औपनिवेशिक राष्ट्रों द्वारा शोषित देशों में सर्वहारा या तो अभी पैदा नहीं हुआ है या फिर उसकी संख्या बहुत कम है। राष्ट्रीय प्रश्न की भांति किसान प्रश्न भी तभी हल हो सकता है, जब सर्वहारा क्रांति विजयी हो और समाजवाद का निर्माण किया जाये। कम्युनिस्टों के कृषिसंबंधी कार्यक्रम का लक्ष्य सभी राष्ट्रों और जातियों के मज़दूरों और किसानों का संयुक्त मोर्चा बनाना है।

राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी लेनिनीय कार्यक्रम का मूलभूत सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, यानी सभी राष्ट्रों एवं जातियों के मज़दूरों तथा अन्य मेहनतकशों को एकजुट बनाना है। चूंकि पूंजी का प्रभुत्व अन्तर्राष्ट्रीय है, इसलिए उसके विरुद्ध संघर्ष भी तभी सफल हो सकता है, जब सभी देशों के मेहनतकश मिल-जुलकर उसे चलायें। सभी देशों के सर्वहारा के हित और लक्ष्य एक ही हैं और एक ही तरह की आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति की उपज हैं। यही कारण है कि मिसाल के लिए, जब रूसी मज़दूर ने शोषण के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा, तो फ़्रांसीसी, जर्मन और अन्य राष्ट्रों के मज़दूरों ने, जिनमें एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के मेहनतकश भी शामिल हैं, हर तरह से उसका साथ दिया।

राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में मार्क्सवादियों के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण तथा कार्यक्रम को परिभाषित करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था कि कम्युनिस्टों ने सदा अन्तर्राष्ट्रीयतावादी रुख़ अपनाया है और अपनाते हैं। राष्ट्रवाद के सामने किसी भी प्रकार घुटने टेकनेवालों की कटु आलोचना करते हुए लेनिन ने बारंबार ज़ोर दिया था कि कम्युनिस्ट सुसंगत अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के पक्षधर हैं। सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीय इसलिए है कि मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक कार्यभार और ऐतिहासिक लक्ष्य – कम्युनिज़्म का निर्माण – खुद भी अन्तर्राष्ट्रीय हैं। यही सर्वहारा को अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के वैचारिक सिद्धान्तों का दृढ़ अनुयायी, मानवतावादी और प्रगतिशील बनाता है।

जनवाद के लिए सर्वाधिक अटल संघर्षकर्त्ता होने के कारण मज़दूर

वर्ग राष्ट्रीय उत्पीड़न का सबसे घोर शत्रु है। व्ला० इ० लेनिन ने बताया था कि मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में साकार बना सच्चा जनवाद वर्ग संघर्ष में राष्ट्रों की समानता के झंडे को बुलंद करता है।

राष्ट्रों के ग्रात्मनिर्णय के विचार ग्रौर सर्वहारा ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों के विश्लेषण से पता चलता है कि राष्ट्रों के ग्रात्मनिर्णय के लिए लड़ना ग्रौर ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद का पालन करना सर्वहारा पार्टी के एक ही कार्यभार के दो पहलू हैं।

राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों की समस्या से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुग्रा है। व्ला० इ० लेनिन का मत था कि राष्ट्रों के ग्रात्मनिर्णय के प्रश्न का समाधान क़ानूनी परिभाषाग्रों में नहीं, वरन राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों की ऐतिहासिक तथा ग्रार्थिक परिस्थितियों में ढूंढ़ा जाना चाहिये।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद ग्रतीत के राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों के बारे में ग्रपना वैज्ञानिक मत निर्धारित कर चुका है ग्रौर ग्राधुनिक युग में राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों के बारे में भी उसका ग्रपना सुनिश्चित दृष्टिकोण है। किन्तु इस समस्या की ग्रागे चर्चा करने से पहले यह बता देना ग्रनुचित न होगा कि सर्वहारा उन्हीं राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों को प्रगतिशील मानता है ग्रौर ग्रपना समर्थन देता है, जो साम्राज्यवाद पर चोट करते हैं, उसे कमज़ोर बनाने ग्रौर उखाड़ फेंकने की ग्रोर लक्षित होते हैं।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों का ग्रध्ययन विश्व इतिहास के तीन युगों – प्राक्-साम्राज्यवादी, साम्राज्यवादी ग्रौर १९१७ की ग्रक्तूबर क्रांति के बाद शुरू हुए युगों – के साथ उनके घनिष्ठ संबंध के परिप्रेक्ष्य में करता है।

ज्ञात है कि सामन्तवाद पर पूंजीवाद की पूर्ण विजय का युग (प्राक्-साम्राज्यवादी युग) राष्ट्रीय ग्रान्दोलनों के साथ जुड़ा हुग्रा था। पश्चिमी यूरोपीय देशों में बूर्जुग्रा राष्ट्रों के निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न ये ग्रान्दोलन ग्रपने स्वरूप की दृष्टि से सामन्तवादविरोधी ग्रौर निरंकुशतंत्रविरोधी थे। किन्तु पूर्वी यूरोपीय देशों में उन्होंने इसके ग्रलावा प्रभुत्वसंपन्न राष्ट्रों द्वारा किये जानेवाले उत्पीड़न के ख़ात्मे में भी योग दिया। इसी तरह यह भी ज्ञात है कि बूर्जुग्रा-जनवादी क्रांति के साथ-साथ राष्ट्रीय ग्रान्दोलन भी बढ़ते हैं। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय ग्रान्दोलन ऐसी क्रांतियों के सहगामी होते हैं।

अब हम साम्राज्यवादी युग पर आते हैं। इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलनों में विभिन्न वर्ग, शक्तियां और पार्टियां भाग लेती हैं। उनकी अभिव्यक्तियां, लक्ष्य और राजनीतिक जामे भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सवाल सिर्फ़ इस बात का है कि ठोस परिस्थिति के विश्लेषण के आधार पर इन आन्दोलनों को वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया जाये। यह बात ऐसे प्रश्नों पर विशेष रूप से लागू होती है, जैसे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों और वर्ग संघर्ष का सहसंबंध और सर्वहारा आन्दोलन के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का संबंध।

व्ला० इ० लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवाद युगीन राष्ट्रीय आन्दोलनों की दृष्टि से कम से कम तीन प्रकार के देशों के बीच अन्तर करना ज़रूरी है। इस युग में यूरोप के विकसित पूंजीवादी देशों और संयुक्त राज्य अमरीका में बूर्जुआ प्रगतिशील राष्ट्रीय आन्दोलन अतीत की बात बन चुके थे; पूर्वी यूरोप के देशों (रूस, आस्ट्रिया, बालकन राज्यों) में वे वर्तमान की बात थे और अर्धउपनिवेशी देशों (चीन, ईरान, तुर्की, आदि) और उपनिवेशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को अधिकांशत: अभी शुरू होना था।*

अनेक देशों में जनव्यापी बूर्जुआ-जनवादी राष्ट्रीय आन्दोलन साम्राज्यवाद के युग में ही शुरू हुए। रूस और अन्य देशों के इतिहास से पता चलता है कि उनमें ऐसे आन्दोलनों का सूत्रपात १९०५ की क्रांति के बाद हुआ। पहली रूसी क्रांति के बाद ही एशिया जागृत होने लगा और ईरान, चीन, तुर्की, भारत, इंडोनेशिया, आदि में राष्ट्रीय आन्दोलन पैदा हुए।

राष्ट्रीय आन्दोलनों ने जनव्यापी बनकर सर्वाधिक संख्यावाले किसानों समेत सभी वर्गों को अपने प्रवाह में खींचा।

शोषण और पराये देश द्वारा उत्पीड़न के विरुद्ध लक्षित होने, अपनी क़तारों में व्यापक जनसामान्य को शामिल करने और, जैसा कि लेनिन ने कहा था, अपने को "जनता के हितों" से संबद्ध बनाने के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन शनैः शनैः समाजवाद के हेतु सर्वहारा के संघर्ष के साथ एकजुट हो जाते हैं।

---

* व्ला० इ० लेनिन : समाजवादी क्रान्ति तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार (१९१६); मार्क्सवाद का विकृत रूप और "साम्राज्यवादी अर्थवाद" (१९१६)।

१९१७ की अक्तूबर क्रांति के बाद राष्ट्रीय आन्दोलनों में हम अनेक नयी विशेषताएं और लक्षण पाते हैं।

राष्ट्रीय प्रश्न के समाधानविषयक लेनिनीय कार्यक्रम में विकसित देशों के सर्वहारा के पूंजीविरोधी संघर्ष और सामाजिक एवं राष्ट्रीय मुक्ति के लिए उत्पीड़ित देशों के संघर्ष को एकजुट बनाने के सवाल पर काफ़ी ध्यान दिया गया है। लेनिन ने कहा था कि विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवादी क्रांति की विजय के लिए पूंजीवादी देशों के सर्वहारा और उपनिवेशों तथा अर्धउपनिवेशों के उत्पीड़ित जनों को लंबे अरसे तक संयुक्त रूप से संघर्ष करना होगा।

लेनिन का यह निष्कर्ष उन्हीं की इस धारणा पर आधारित था कि विकसित देशों का सर्वहारा पिछड़े देशों की मेहनतकश किसान जनता का अग्रदल और नेता है। किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि "अकेले अग्रदल द्वारा ही कम्युनिज़्म में संक्रमण नहीं हो सकता" और "समस्त उपनिवेशों के मेहनतकशों और प्रथमतः पूर्व के जनों के सहयोग के बिना" उसके लिए विजय पाना असंभव है।* लेनिन अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग को पूर्व के लाखों-लाख मेहनतकशों और शोषित जनगण का एकमात्र मित्र मानते थे। शोषकों पर सार्विक विजय तभी पायी जायेगी, जब "उन्नत देशों के बूर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा के गृहयुद्ध और जनवादी तथा क्रांतिकारी आन्दोलनों की **एक पूरी की पूरी शृंखला को**, जिनमें अविकसित, पिछड़े तथा उत्पीड़ित देशों का राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन भी शामिल है, एकाकार" बना दिया जायेगा।**

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद पिछड़े, उत्पीड़ित जनगण सोवियत देश के गिर्द एकजुट हुए, जो समाजवाद का निर्माण कर रहा था। व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "अब हमारे सोवियत जनतंत्र

---

*व्ला० इ० लेनिन : पूर्व की जातियों के कम्युनिस्ट संगठनों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस में भाषण (२२ नवम्बर, १९१९)।

**व्ला० इ० लेनिन : मार्क्सवाद का विकृत रूप और "साम्राज्यवादी अर्थवाद" (१९१६)।

को पूर्व के जगते हुए सभी जनों को अपने चारों ओर एकत्र करके उनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के खिलाफ़ लोहा लेना है।"*

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में सर्वहारा को नेतृत्वकारी भूमिका सामाजिक संबंधों की प्रणाली में उसके स्थान की वजह से मिलती है। सर्वहारा समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति और आज के युग का सबसे क्रांतिकारी तथा संगठित वर्ग है। वह सब तरह के उत्पीड़नों के खिलाफ़ है और उसके अपने कोई स्वार्थ नहीं होते। इन कारणों से सर्वहारा जनता और राष्ट्र के मूलभूत हितों को शेष सभी वर्गों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यक्त करता है। वह किसानों के व्यापक हल्क़ों को, जिनके लिए औपनिवेशिक उत्पीड़न का अन्त देहात में सामन्तवादी अवशेषों के उन्मूलन और कृषिभूमि समस्या के समाधान से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, अपने पीछे ले जाने में समर्थ है। उपनिवेशों तथा पराधीन देशों और नवोदित राष्ट्रीय राज्यों में अपनी अपेक्षाकृत अल्पसंख्या के बावजूद मज़दूर वर्ग और उसकी पार्टी – कम्युनिस्ट पार्टी – राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की सबसे अगली क़तारों में हैं।

व्ला० इ० लेनिन का यह विचार राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान के उनके कार्यक्रम का एक अंग था कि अल्पविकसित देशों के जनगण ग़ैर-पूंजीवादी विकास का पथ अपना सकते हैं और पूंजीवाद से गुज़रे बिना सामन्तवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण कर सकते हैं। ग़ैरपूंजीवादी विकास का सिद्धान्त साथ ही विश्व समाजवादी क्रांति और समाजवाद निर्माण विषयक मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा का भी अभिन्न अंग है।

ग़ैरपूंजीवादी विकास का सिद्धान्त क्या है?

मार्क्सवाद-लेनिनवाद सिखाता है कि मानवजाति का विकास एक ऐसी अविभाज्य प्रक्रिया है, जिसमें एक निश्चित क्रम में सामाजिक-आर्थिक विरचनाएं बदलती रहती हैं। उनके परिवर्तन का क्रम ही विश्व इतिहास के विकास की आम नियमसंगति को प्रकट करता है।

हर सामाजिक-आर्थिक विरचना का एक विशेष प्रकार का सामाजिक ढांचा है, जिसके पैदा होने, काम करने और दूसरे, उत्कृष्टतर कोटि के सामाजिक ढांचे में बदलने के अपने नियम होते हैं। विरचना परिवर्तन होने

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'पूर्व की जातियों के कम्युनिस्ट संगठनों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस में भाषण' (२२ नवम्बर, १९१९)।

पर वे अन्तर्विरोध ख़त्म हो जाते हैं, जो उत्पादक शक्तियों के नये विकासस्तर और इस विकास को अवरुद्ध करनेवाले पुराने उत्पादन संबंधों के बीच पैदा हुए थे। हर बार नये उत्पादन संबंधों की स्थापना का मतलब प्रगति के पथ की बाधाओं की समाप्ति होती है। एक विरचना की जगह पर दूसरी विरचना का आना समाज के आर्थिक और आत्मिक जीवन में प्रगति तेज़ बनाने में सहायक होता है।

किन्तु क्या इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक होगा कि हर देश और जन के लिए सभी सामाजिक-आर्थिक विरचनाओं से गुज़रना ज़रूरी है? वर्गाधारित समाज के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया के अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि दासप्रथात्मक व्यवस्था और सामन्तवाद जैसी सामाजिक-आर्थिक विरचनाओं का क्रमबद्ध परिवर्तन सामान्यतः मानवजाति के विकास का एक अनिवार्य चरण है, मगर यही बात हर किसी देश के बारे में नहीं कही जा सकती। अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण अनेक जनों ने दासप्रथात्मक और सामन्तवादी विरचनाओं से गुज़रे बिना अपने पहले के सामाजिक-आर्थिक संबंधों से पूंजीवाद में सीधे संक्रमण किया है।

किन्तु क्या कोई जनता पूंजीवादी अवस्था से गुज़रे बिना प्राग्-पूंजीवादी संबंधों से सीधे समाजवाद में संक्रमण कर सकती है?

पहली बार इस प्रश्न का विज्ञानसम्मत सकारात्मक उत्तर कार्ल मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने दिया था।* उनका मत था कि साथ-साथ और अन्योन्यक्रिया सहित लिये जाने पर बाह्य (कतिपय सभ्य देशों में क्रांति और समाजवादी व्यवस्था की विजय) और आन्तरिक (पहले के पिछड़े जनों में क्रांतिकारी शक्तियों की मौजूदगी), ये दो कारक सामन्तवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण सुनिश्चित कर सकते हैं।

---

*'ओतेचेस्त्वेन्नियें ज़ापीस्की' पत्रिका के नाम मार्क्स का पत्र; रूसी क्रांतिकारी त्काचोव के बारे में एंगेल्स की आलोचनात्मक टिप्पणियां; प्रसिद्ध रूसी क्रांतिकारी महिला वेरा ज़सूलिच के पत्र का मार्क्स द्वारा दिया गया उत्तर; 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' के दूसरे रूसी संस्करण के लिए मार्क्स और एंगेल्स द्वारा लिखित प्रस्तावना; 'रूस में सामाजिक प्रश्न के बारे में' शीर्षक अपनी रचना के लिए एंगेल्स द्वारा लिखा गया उपसंहार, इत्यादि।

रूस के इतिहास का अध्ययन करके वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि इस देश के समाजवाद में संक्रमण करने की अनिवार्य शर्त यह है कि पहले पश्चिमी यूरोप के आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशों में सर्वहारा क्रांति और स्वयं रूस में किसान क्रांति विजयी हों।* मार्क्सवाद के प्रवर्तक सोचते थे कि अगर विकसित देशों में समाजवादी क्रांति विजयी हो जाये और इन देशों का विजयी सर्वहारा पिछड़े जनों को भौतिक, संगठनात्मक तथा अन्य सहायता दे, तो प्राग्-पूंजीवादी अवस्था में स्थित देश पूंजीवाद को लांघ सकता है।

इस प्रकार रूस का उदाहरण देकर मार्क्स और एंगेल्स ने दिखाया था कि कुछ देश अपने विकास के पूंजीवादी चरण की अवधि को घटा सकते हैं और कुछ ख़ास परिस्थितियां होने पर तो उनके लिए उससे गुज़रना भी अनिवार्य नहीं होगा।

समाजवादी क्रांति के सिद्धान्त को प्रमाणित करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने पिछड़े देशों तथा जनों के पूंजीवादी अवस्था से गुज़रे बिना सीधे समाजवाद में संक्रमण से संबंधित विचार को विस्तार से प्रतिपादित किया।

साम्राज्यवाद के युग का अध्ययन करके व्ला० इ० लेनिन ने यह नियम खोजा था कि इस युग में पूंजीवाद का आर्थिक तथा राजनीतिक विकास असम होता है। इस नियम के अनुसार कुछ या किसी एक ही देश में समाजवाद की विजय संभव है और विभिन्न देशों में, उनके आर्थिक तथा राजनीतिक स्तरों में भेद के कारण, समाजवाद में संक्रमण की गतियों तथा अवधियों में अन्तर भी उसी की क्रिया का परिणाम हैं। यही नियम इसकी यथार्थ संभावना उत्पन्न करता है कि पिछड़े देश अपने विशिष्ट ढंग से समाजवाद की ओर बढ़ेंगे।

अल्पविकसित देशों के ग़ैरपूंजीवादी विकास पथविषयक सिद्धान्त की रचना करते समय व्ला० इ० लेनिन ने साम्राज्यवाद के युग में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के इतिहास का सहारा लिया था। उन्होंने दिखाया था

---

*फ़्रे० एंगेल्स: 'प्रवासी साहित्य' (१८७४-१८७५); कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स: "'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' के दूसरे रूसी संस्करण की प्रस्तावना" (१८८२); फ़्रे० एंगेल्स: "'रूस में सामाजिक प्रश्न के बारे में' के लिये उपसंहार" (१८९४)।

कि पूंजीवाद के विरुद्ध औपनिवेशिक जनों का संघर्ष समाजवाद के लिए उपनिवेशस्वामी देशों के सर्वहाराओं की वर्गीय लड़ाइयों को आसान बना देता है और इस तरह स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशों के ग़ैरपूंजीवादी विकास के लिए परिस्थितियां तैयार करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्ला० इ० लेनिन ने अक्तूबर क्रांति से पहले ही इस संभावना को इंगित कर दिया था कि विकास की पूंजीवादी अवस्था को लांघना संभव है। अक्तूबर क्रांति के बाद भी उन्होंने अपने इस विचार को और आगे विकसित किया।

समाजवादी क्रांति के बाद, जब सोवियत सत्ता के रूप में विश्व मुक्ति आन्दोलन को एक बहुत बड़ा सहारा मिल गया और सोवियत संघ के लिए सारे विश्व के उत्पीड़ित जनों के साथ गठबंधन बनाना संभव हो गया, तो अल्पविकसित देशों का ग़ैरपूंजीवादी विकास भी वास्तविधता बन गयी।

'हमारी क्रांति के बारे में' शीर्षक रचना में व्ला० इ० लेनिन ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के ठोस ऐतिहासिक रूपों की बहुविधता से संबंधित प्रस्थापना पेश की थी और रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बो०) की दसवीं कांग्रेस में बताया था कि समाजवाद में संक्रमण के अनेक रूप हो सकते हैं। १९२० में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में बोलते हुए उन्होंने कहा था, "...यह समझना भूल होगी कि विकास का पूंजीवादी चरण पिछड़ी हुई जातियों के लिए अपरिहार्य है।

"...कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को यह प्रतिपादित करना चाहिये और सैद्धान्तिक रूप से उसकी पुष्टि भी करनी चाहिये कि समुन्नत देशों के सर्वहारा की सहायता से पिछड़े हुए देश... विकास के निश्चित चरणों से होते हुए, बिना पूंजीवादी व्यवस्था से गुज़रे हुए, कम्युनिज़्म तक पहुंच सकते हैं।"*

व्ला० इ० लेनिन ने इस लक्ष्य को पाने का साधन भी बताया था। उत्पीड़ित राष्ट्रों को विजयी सर्वहारा की निःस्वार्थ सहायता उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण और निर्णायक है। यह सहायता राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक,

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस। राष्ट्रीय और औपनिवेशिक प्रश्नों की समिति में रिपोर्ट' (२६ जुलाई, १९२०)।

यानी सब तरह की और इस योग्य होनी चाहिये कि वह भूतपूर्व उपनिवेशों के सदियों से चले आ रहे पिछड़ेपन को, उनकी उत्पादक शक्तियों के क्षीण विकास, सामाजिक ढांचे, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और रहन-सहन में जड़ें जमाए हुए पिछड़ेपन को दूर करने का सशक्त साधन बन सके।

इस तरह व्ला० इ० लेनिन ने प्रश्न को जिस तरह प्रस्तुत किया, उसमें विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ मुख्य प्रश्न, यानी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के साथ सर्वहारा क्रांति के सहसंबंध के ज़रिये साम्राज्यवाद के चंगुल से उत्पीड़ित राष्ट्रों की मुक्ति के प्रश्न का ही एक अंग था।

पिछड़े हुए देशों का समाजवाद में संक्रमण अनेक बहुत ही जटिल सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान से जुड़ा होता है। अनेक राष्ट्रों और जनों को पूंजीवादी अवस्था को लांघकर अपेक्षया कम समय में ही नये जीवन का अभ्यस्त बनना पड़ता है। अतः ज़रूरी था कि प्राग्-पूंजीवादी संबंधों से समाजवाद में संक्रमण के रास्ते, तरीक़े और साधन खोजे जायें।

पिछड़े हुए देश सामान्यतया खेतिहर देश होते हैं। उनमें से बहुत से विकास के सामंतवादी चरण या उस चरण से गुज़र रहे होते हैं, जिसमें सामान्तवाद के अवशेष अभी बहुत बाकी हैं। इसलिए सामन्तवाद और उसके अवशेषों के ख़ात्मे का सवाल बहुत ही महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक बन जाता है।

सोवियत संघ में पहले के उत्पीड़ित जनों के साथ मज़दूर वर्ग का सहसंबंध ही, जो उत्पीड़िकों के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष के फलस्वरूप बना, वह निर्णायक सामाजिक शक्ति थी, जो सामन्तवाद का अन्त करके विभिन्न जनों को पूंजीवादी अवस्था में क़दम रखे बिना सीधे समाजवाद निर्माण में प्रवृत्त कर सकी। कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व तथा निदेशन में काम करनेवाला यह गठबंधन विभिन्न राष्ट्रों और जातियों की वास्तविक असमानता के उन्मूलन का आधार बना।

यह वास्तविक असमानता किन बातों में प्रकट होती थी?

अक्तूबर क्रांति ने रूस के सभी जनों को राजनीतिक दृष्टि से समान बनाया और सभी मेहनतकशों को शोषण से मुक्ति और श्रम के अनुसार मेहनताना पाने का समान अधिकार दिया। मगर यह अभी वास्तविक आर्थिक समानता का, विशेषतः माली खुशहाली और संपूर्ण आर्थिक विकास

के क्षेत्र में समानता का सूचक न था। इस तरह आर्थिक दृष्टि से भी असमानता का उन्मूलन करना ज़रूरी था।

पिछड़े जनों की वास्तविक असमानता को दूर करने और राजनीतिक समानता के साथ-साथ आर्थिक समानता भी लाने का मतलब था ग़ैर-रूसी छोरवर्ती इलाक़ों और उनकी जनता को देश के मध्यवर्ती भाग तथा उन्नत रूसी राष्ट्र के स्तर पर पहुंचाने के विराट कार्यक्रम को पूरा करना। इस प्रक्रिया की मुख्य कड़ियां थीं: औद्योगिक केन्द्रों का निर्माण; राष्ट्रीय सर्वहारा कर्मचारियों की तैयारी; राष्ट्रीय राज्यत्व का सुदृढ़ीकरण, स्वरूप से राष्ट्रीय और सार से समाजवादी संस्कृति का विकास।

कम्युनिस्ट पार्टी की बारहवीं कांग्रेस (१९२३) के निर्णयों में छोरवर्ती इलाक़ों में औद्योगिक केन्द्रों बनाने के ठोस उपाय सुझाये गये थे: मध्यवर्ती भाग से कारख़ानों का स्थानान्तरण और छोरवर्ती इलाक़ों में नयी उद्योग शाखाओं की स्थापना। छोरवर्ती इलाक़ों में औद्योगिक केन्द्रों के निर्माण के फलस्वरूप वहां स्थानीय, राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग विकसित हुआ, जिससे वहां सोवियत सत्ता भी सुदृढ़ बनी।

जिन क्षेत्रों में पिछड़े जन रहते थे, उनमें समाजवाद निर्माण के तरीक़ों की चर्चा करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने उन्हें आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पिछड़ापन दूर करने में रूसी सर्वहारा द्वारा सहायता दिये जाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने बिजलीकरण और सिंचाई पर भी विशेष ध्यान दिया, क्योंकि वह समझते थे कि बिजलीकरण समाजवाद में संक्रमण की एक निर्णायक शर्त है।

सोवियत संघ में इसका ध्यान रखा गया कि केन्द्रीय शासन निकायों का गठन करते समय जनतंत्रों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की–एक दूसरे के प्रति भी और केन्द्रीय सत्ता के प्रति भी–समानता सुनिश्चित रहे।

सर्वोच्च अखिल संघीय निकायों में एक विशेष निकाय ऐसा भी था, जिसमें समानता और जनतंत्रों में शामिल सभी राष्ट्रों एवं जातियों के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों के आधार पर बिना किसी अपवाद के सभी जनतंत्रों और जातीय प्रदेशों को प्रतिनिधित्व दिया गया था। सोवियत संघ के सभी कार्यपालक निकाय इस तरह बनाये गये कि उनमें सभी जनतंत्रों के प्रतिनिधि वस्तुतः भाग ले सकें और देश की समस्त जनता की आवश्यकताएं तथा मांगें पूरी हो सकें। सभी जनतंत्रों को काफ़ी व्यापक

वित्तीय, विशेषत: बजटीय अधिकार प्रदान किये गये, जो उन्हें प्रशासन, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के मामले में खुद अपनी पहल दिखाने की संभावना देते थे।

इन और दूसरे जनवादी क़दमों से जन मैत्री को सुदृढ़ बनाने और देश के सभी ग़ैर-रूसी इलाक़ों का तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास करने में सहायता मिली।

इस प्रकार व्ला० इ० लेनिन ने सिद्ध किया कि पूंजीवाद को लांघकर सामन्तवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण के लिए शोषकों की सत्ता को उलटना, मज़दूर-किसान शासन क़ायम करना और पिछड़े जनों के आर्थिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए उन्नत देशों के सर्वहारा द्वारा उनकी सहायता किया जाना बहुत ज़रूरी है। चाहे एक ही देश में सही, सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय के बिना विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ असंभव है।

व्ला० इ० लेनिन ने यह भी सिद्ध किया कि पिछड़े देशों में मात्र इस उद्देश्य से पहले पूंजीवाद का विकास कर लेना ज़रूरी नहीं है ताकि बाद में उसे ख़त्म किया जाये। इन देशों में पूंजीवाद का विकल्प ग़ैरपूंजीवादी पथ है, जो कोई विशेष विरचना या पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का रास्ता नहीं, बल्कि समाज के समाजवादी पुनर्गठन की योजना का अभिन्न अंग है।

पिछड़े देशों का पूंजीवादी अवस्था को लांघकर सीधे समाजवाद की ओर बढ़ना पूंजीवाद से समाजवाद में क्रांतिकारी संक्रमण के युग, समाजवादी और राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों के युग, साम्राज्यवाद के पतन तथा औपनिवेशिक प्रणाली के उन्मूलन के युग और विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवाद तथा कम्युनिज़्म की विजय के युग में सामाजिक विकास की वस्तुपरक नियमसंगति ही है।

ग़ैरपूंजीवादी विकास के सिद्धान्त के संदर्भ में व्ला० इ० लेनिन ने सोवियतों के प्रश्न की विवेचना की। रूस के एशियाई भाग में सोवियतों के अनुभव का सामान्यीकरण करके वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ग़ैरपूंजीवादी विकास के लिए किसान सोवियतें हितकर सिद्ध हो सकती हैं। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में पेश की गयी रिपोर्ट में उन्होंने सवाल उठाया कि किसानबहुल आबादीवाले पिछड़े देश सोवियतों के संघटन के विचार को भली-भांति अपना सकते हैं और उसे अमली जामा पहना

सकते हैं। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में उन्होंने कहा था, "सोवियत संघटन का विचार बड़ा सीधा-सादा विचार है, जिसे न सिर्फ़ सर्वहारा संबंधों पर ही, अपितु कृषक सामन्तवादी और अर्धसामन्तवादी संबंधों पर भी लागू किया जा सकता है।"

अपने इन विचारों को व्ला० इ० लेनिन ने सोवियतों की आठवीं अखिल रूसी कांग्रेस (दिसंबर, १९२०) में सुस्पष्ट किया। नये सोवियत जनतंत्रों (बुख़ारा, आज़रबैजान और आरमीनिया) की स्थापना की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था, "ये जनतंत्र इस बात को प्रमाणित और पुष्ट करते हैं कि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में ही नहीं, जिनमें सर्वहारा जैसा सामाजिक आधार मौजूद है बल्कि जिन देशों में किसान समुदाय जैसा आधार है, उनमें भी सोवियत सत्ता के विचारों और सिद्धान्तों को समझा और तुरन्त लागू करने योग्य माना जाता है।" बुख़ारा लोक सोवियत जनतंत्र को व्ला० इ० लेनिन ने कृषक-सोवियत जनतंत्र कहा था। यही संज्ञा ख़्वारज़्म लोक सोवियत जनतंत्र पर भी लागू होती थी।*

सोवियतों की अच्छाइयों पर ज़ोर देते हुए व्ला० इ० लेनिन ने साथ ही इस बात का भी उल्लेख किया कि कुछ देशों में उनकी ऐतिहासिक परिस्थितियों, परंपराओं, आदि को देखते हुए राज्य संघटन के दूसरे, नये रूपों को अपनाना अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकता है।

व्ला० इ० लेनिन ने अपनी रचनाओं में अपने को पूर्व के राष्ट्रों द्वारा समाजवाद निर्माण की संभावना के प्रश्न के सैद्धान्तिक विवेचन तक ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने विश्व ऐतिहासिक महत्त्व के इस कार्यभार की पूर्ति के आर्थिक तथा राजनीतिक उपाय भी बताये और भूतपूर्व

---

*अक्तूबर क्रांति से पहले बुख़ारा और ख़ीवा रूसी ज़ारशाही के अधीनस्थ राज्य थे और उनकी स्थिति उपनिवेशों जैसी ही थी। १९२० में उनमें लोक क्रांति विजयी हुई, जिसके बाद वहां लोक-जनवादी शासन क़ायम किया गया। आगे चलकर ये ही शासन समाजवादी सरकारों में बदल गये। १९२४ में जब मध्य एशिया में राष्ट्रीय राज्यों का सीमानिर्धारण किया गया, तो बुख़ारा और ख़्वारज़्म सोवियत जनतंत्रों के जन – उज़्बेक और तुर्कमान – स्वेच्छा से उज़्बेक और तुर्कमान सोवियत समाजवादी जनतंत्रों में शामिल हो गये।

उत्पीड़ित जनों को समाजवाद निर्माण में प्रवृत्त करने के लचीले तथा कारगर तरीक़े तथा साधन खोजे।

उन्होंने कहा कि छोरवर्ती इलाक़ों की ग़ैर-रूसी उत्पीड़ित जनता के साथ रूसी जनता के सही परस्परसंबंध क़ायम करने का – शब्दों में नहीं, बल्कि व्यवहार में – सर्वाधिक महत्त्व होगा। यह सवाल उठाने के बाद कि "इसके लिए आवश्यकता किस बात की है?" उन्होंने स्वयं ही उसका जवाब भी दिया, "इसके लिए ज़रूरी है कि ग़ैर-रूसियों पर विगत काल में 'प्रभुत्वशाली' राष्ट्र की सरकार द्वारा जो संदेह और अविश्वास किया गया तथा उनके साथ जो अपमानजनक हरकतें की गयीं, उनके लिए किसी न किसी प्रकार, अपने सदाचरण द्वारा अथवा रिआयतें देकर, उनकी क्षतिपूर्ति की जाये।"* पूर्व के जनों के कम्युनिस्ट संगठनों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस (१९१९) में भाग लेने आये प्रतिनिधियों की एक बैठक में बोलते हुए व्ला० इ० लेनिन ने बल दिया था कि स्थानीय राष्ट्रों और जातियों के लोगों के साथ रूस की मेहनतकश जनता का घनिष्ठ सहबंध बनाना अविश्वास को ख़त्म करने की एक निर्णायक शर्त है।

व्ला० इ० लेनिन ने छोरवर्ती इलाक़ों के कम्युनिस्टों को सलाह दी थी कि वे मार्क्सवादी सिद्धान्त को आधार बनाकर आम जनता तक पहुंचने के विशिष्ट उपाय और रूप खोजें, उन्हें समाजवाद निर्माण की मुख्यधारा में उनके द्वारा ग्राह्य और स्वीकार्य तरीक़ों से सम्मिलित करें। उन्होंने आगे कहा था कि दत्त जनता के विकास की सभी विशेषताओं को, उसके रहन-सहन, धर्म, रीति-रिवाजों की विशिष्टताओं को पूरा-पूरा ध्यान में रखा जाना चाहिये और काम इस ढंग से करना चाहिये कि पिछड़े से पिछड़ा मेहनतकश भी समाजवाद निर्माण के कार्य को अपना ही कार्य माने।

व्ला० इ० लेनिन इन सब बातों को दोहराते नहीं थकते थे। उन्होंने ग़ैर-रूसी जनतंत्रों के कम्युनिस्टों को याद दिलाया कि उनका काम ग़रीब मुसलमानों की, उन्हें संगठित तथा शिक्षित बनाने की निरन्तर और

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'जातियों या "स्वायत्तीकरण" का प्रश्न' (१९२२)।

अधिकतम चिन्ता करना है।* कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस के राष्ट्रीय तथा औपनिवेशिक प्रश्नों के आयोग की रिपोर्ट में उन्होंने "जनता में स्वतंत्र राजनीतिक विचार और स्वतंत्र राजनीतिक क्रियाशीलता की भावना भरने" को पूर्व के भूतपूर्व उत्पीड़ित इलाक़ों में काम करनेवाले कम्युनिस्टों का एक मुख्य कर्त्तव्य बताया।

इस संबंध में व्ला० इ० लेनिन के इस अन्य निर्देश का विशेष महत्त्व है, जो उन्होंने पूर्व के जनों के कम्युनिस्ट संगठनों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस में तुर्किस्तान जनतंत्र के कम्युनिस्टों को दिया था। उसमें उन्होंने "कम्युनिज़्म के सामान्य सिद्धान्त तथा व्यवहार" का सहारा लेने और मध्य एशिया की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल ढंग से "इस सिद्धान्त तथा व्यवहार को लागू करने" की सलाह दी थी। इसी विचार को आगे विकसित करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने १९२१ में सोवियत पूर्वी जनतंत्रों के कम्युनिस्टों से अनुरोध किया कि वे रूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की कार्यनीति की अंध नक़ल न करके उस कार्यनीति की ख़ास-ख़ास विशेषताओं के पीछे जो कारण काम कर रहे हैं, उनका विश्लेषण करें, "भिन्न-भिन्न ठोस परिस्थितियों के अनुकूल विचार करके उसमें ज़रूरी परिवर्तन लायें" और "१९१७–१९२१ के अनुभवों की भावना का, उनके सार का, उनके सबक़ का, न कि उनके ऊपरी अर्थों का, सदुपयोग करें"।**

व्ला० इ० लेनिन वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों के प्रसार को, जनता की भाषा में कम्युनिस्ट प्रचार बढ़ाने को बड़ा महत्त्व देते थे। उन्होंने पूर्व के कम्युनिस्टों को सलाह दी कि वे असली कम्युनिस्ट रचनाओं का हर जनता की भाषा में अनुवाद करें।

व्ला० इ० लेनिन के नेतृत्व में अपना राष्ट्रीय कार्यक्रम निर्धारित करते समय बोलशेविक पार्टी के सामने राज्य के ढांचे और एकीभूत राज्य

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'ग० इ० सफ़ारोव के नाम पत्र' (७ अगस्त, १९२१)।

**व्ला० इ० लेनिन: 'आज़रबैजान, जार्जिया, दाग़िस्तान और पहाड़ी जनतंत्रों के साथी-कम्युनिस्टों को' (१९२१)।

में विभिन्न जनों की संघबद्धता के सिद्धान्तों का सवाल उठा था। उसका वैज्ञानिक समाधान ढूंढ़ा गया, जिसमें ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया था। मगर, जैसा कि मालूम है, परिस्थितियां बदल सकती हैं और जो निर्णय कुछ परिस्थितियों में सही है, वही दूसरी परिस्थितियों में ग़लत सिद्ध हो सकता है।

बोल्शेविकों ने व्यापक प्रादेशिक स्वायत्तता और जनवादी स्थानीय स्वशासन का रास्ता अपनाया था।

प्रादेशिक स्वायत्तता का अर्थ है कि अपनी आबादी की विशिष्ट राष्ट्रीय बनावट तथा रहन-सहन की परिस्थितियों की दृष्टि से भिन्न हर क्षेत्रीय इकाई (प्रदेश) को राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर अपना राष्ट्रीय राज्य क़ायम करने, अपने विधायी, तथा प्रशासनिक निकाय और आर्थिक तथा सांस्कृतिक संस्थाएं बनाने का अधिकार है। निस्संदेह यह सब इस शर्त पर कि दत्त प्रदेश बहुराष्ट्रिक राज्य के साझे क़ानूनों के मातहत होगा।

बोल्शेविकों ने प्रादेशिक स्वायत्तता का विचार आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी पार्टी के नेता ओतो बावेर तथा आर० श्प्रिंगर द्वारा पेश किये गये और इस पार्टी द्वारा १८९९ में अपनी ब्रियून कांग्रेस में स्वीकार किये गये सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता के बूर्जुआ राष्ट्रवादी नारे के मुक़ाबले में रखा था।

"सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता" क्या है? उसके प्रतिपादकों के विचारानुसार, हर नागरिक, चाहे वह देश के किसी भी भाग में क्यों न रहता हो, अपने को किसी न किसी राष्ट्र या जाति में दर्ज करवाता है और देश की समस्त आबादी राष्ट्रीय संघों के रूप में संगठित होती है, जो अपनी संसदें चुनती हैं। इन संसदों का काम संस्कृति के क्षेत्र (राष्ट्रीय स्कूल, प्रेस, धर्म, इत्यादि) तक ही सीमित होता है। राजनीतिक प्रश्न उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। राजनीति और आर्थिक नीति का निर्धारण तथा संचालन देश के प्रमुख राष्ट्र के प्रभुत्वसंपन्न वर्गों के हाथों में होता रहता है। पार्टियां, ट्रेड यूनियनें और अन्य राजनीतिक संगठन राष्ट्रीय के आधार पर ही बनाये जा सकते हैं।

इस प्रकार सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता राष्ट्रीय प्रश्न को राष्ट्र के जीवन के क्षेत्रीय, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं से अलग करके संस्कृति

के प्रश्न तक ही सीमित कर देती थी। वह राष्ट्रीय प्रश्न को हल करने के बजाय, उल्टे, और अधिक उलझा हुआ तथा उग्र बनाती थी। वह मेहनतकशों को एकजुट बनाने के बजाय राष्ट्रीय संस्कृति के आधार पर उन्हें विभाजित करती थी और उन्हें राज्य के जनवादी पुनर्गठन के निमित्त संघर्ष से विमुख बनाती थी।

सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता से प्रादेशिक स्वायत्तता का अन्तर इस बात में है कि उसका संबंध एक निश्चित क्षेत्र की निश्चित आबादी से है। वह इस बात पर आधारित है कि हर राष्ट्र के पास अपने ऐसे क्षेत्र का होना ज़रूरी है, जिसमें उस राष्ट्र की अधिकांश आबादी संकेन्द्रित है। वह राष्ट्रीय दीवारों को तोड़ती है और वर्गीय पहचान के आधार पर लोगों के एकजुट होने में सहायक बनती है। प्रादेशिक स्वायत्तता प्राकृतिक संसाधनों तथा उत्पादक शक्तियों का अधिकतम कारगर ढंग से उपयोग करने और इस तरह हर राष्ट्र को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आदि सभी दृष्टियों से उन्नत बनने की संभावना देती है।

अक्तूबर क्रांति के बाद मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यक्रम में सोवियत स्वायत्तता का विचार स्वीकार किया गया। उसे रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र के १६१८ के संविधान के ११ वें अनुच्छेद में इस प्रकार सूत्रबद्ध किया गया: "अपने विशिष्ट रहन-सहन के ढंग और राष्ट्रीय बनावट की दृष्टि से भिन्न प्रदेशों की सोवियतें स्वायत्त प्रादेशिक संघों के रूप में एकबद्ध हो सकती हैं।" रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र के १६२५ के संविधान और सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ के १६३६ के संविधान ने सोवियत स्वायत्तता के सिद्धान्त की पुष्टि की।

तुर्की की महान राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष मुस्तफ़ा कमाल के नाम व्ला० इ० लेनिन के ७ जनवरी, १६२१ के तार में सोवियत स्वायत्तता को यों परिभाषित किया गया: "सोवियत रूस अपने क्षेत्र में रहनेवाले सभी जनों को स्वायत्तता देता है और हर जन के आत्मनिर्णय के अधिकार के सिद्धान्त के अनुसार उनके द्वारा स्थानीय जनतंत्रों की स्थापना का समर्थन करता है। एकमात्र यही सिद्धान्त परस्पर समझ और परस्पर विश्वास पर आधारित बंधुत्वपूर्ण संबंध क़ायम करने की संभावना देता है... एकमात्र ऐसी नीति ही रूस के सभी राष्ट्रों और जातियों को मज़बूत

बनाती है और उन्हें एक महान शक्तिशाली परिवार के रूप में एकजुट करती है।"

सोवियत स्वायत्तता विकास के बहुत ही भिन्न-भिन्न स्तरों पर स्थित छोरवर्ती ग़ैर-रूसी इलाक़ों को देश के मध्य भाग के साथ संघबद्धता को सुनिश्चित करती है। यह स्वायत्तता जड़ और अपरिवर्तनीय नहीं है। उल्टे, वह तरह-तरह के विकल्प सुझाती है, जैसे स्वायत्त प्रदेश, स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र, आदि। विकास, आबादी वृद्धि और आर्थिक उन्नति के फलस्वरूप स्वायत्त प्रदेश स्वायत्त जनतंत्रों में परिवर्तित हो सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी मार्क्सवादी कार्यक्रम में स्वायत्तता के अतिरिक्त जनतंत्रों के संघ (फ़ेडरेशन) की भी चर्चा की गयी है।

राष्ट्रों का संघ राज्य (फ़ेडरल यूनियन) क्या है? यह एक ऐसा संघ है, जिसमें कई राज्य मिलकर एक नया राज्य बनाते हैं और उसके सभी निवासियों की एक ही नागरिकता होती है।

बूर्जुआ संघ (फ़ेडरेशन) सामान्यतः राष्ट्रीयता के आधार पर नहीं, वरन ऐतिहासिकतः विकसित राजनीतिक इकाइयों के यूनियन के तौर पर बनाये जाते हैं, जिसका शासन संचालन केवल केन्द्रीय सरकार के हाथों में होता है। इसका एक ठेठ उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका है। यहां औपचारिकतः संघीय व्यवस्था सुरक्षित रखी गयी है, किन्तु व्यवहार में वह एक ऐसा राज्य बन गया है, जिसका संचालन स्थानीय नहीं, अपितु केन्द्रीय संघीय निकायों द्वारा किया जाता है। ऐसे राज्य को एकात्मक राज्य (यूनिटरी स्टेट) कहते हैं।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति की तैयारियों के दौरान और विशेषतः उसकी विजय के बाद कम्युनिस्टों ने राष्ट्रों की पूर्ण समानता तथा स्वैच्छिक एकीकरण के आधार पर सोवियत फ़ेडरेशन बनाने के प्रश्न पर विचार किया था। कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात को ध्यान में रखा था कि संघीकरण विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के अलगाव तथा विसंबंधन को ख़त्म कर उन्हें एक दूसरे के निकट आने और एकजुट बनने में मदद देगा।

जनवरी, १९१८ में हुई सोवियतों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने संघ के प्रश्न पर ग़ौर किया। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत "मेहनतकशों और शोषित जनों के अधिकारों के घोषणापत्र" में कहा गया था, "स्वतंत्र राष्ट्रों के

स्वतंत्र सहबंध के आधार पर सोवियत रूसी जनतंत्र को सोवियत राष्ट्रीय जनतंत्रों का संघ (फ़ेडरेशन) बनाया जाता है।" १६१६ में कम्युनिस्ट पार्टी ने संघ के सिद्धान्त को अपने दूसरे पार्टी कार्यक्रम में शामिल कर लिया।

सोवियत जनतंत्रों का संघ बूर्जुआ संघ राज्यों से मूलतः भिन्न है। उसके विशिष्टतासूचक लक्षण हैं सर्वहारा अधिनायक की विद्यमानता, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, संघ में स्वेच्छा से सम्मिलन और जनवादी केन्द्रीयता। सोवियत संघ में स्वायत्तता का महत्व ह्रास नहीं, बल्कि, उल्टे, उसकी वृद्धि ही होती है। स्वायत्तता और संघीकरण के समन्वय के फलस्वरूप विभिन्न जनों के राष्ट्रीय राज्यत्व बनाने (स्वायत्त शासन के रूप में) और उन्हें एक संघ राज्य में संघटित करने (संघ के रूप में) की संभावना मिली।

राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान का कार्यक्रम तैयार करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने मुख्यतः रूस की ठोस परिस्थितियों को आधार बनाया था। मगर साथ ही उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर और क्रांतिकारी आन्दोलन के अनुभव और अन्य देशों की जनता के इतिहास की भी उपेक्षा नहीं की। राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी लेनिनीय सिद्धान्त, कार्यक्रम और नीति का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय है।

मिसाल के लिए ग़ैरपूंजीवादी विकास के सिद्धान्त को ही लें। आधुनिक परिस्थितियों में राष्ट्रीय-जनवादी क्रांतियों की नियति और विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया की संभावनाओं के मूल्यांकन के लिए उसका बहुत बड़ा महत्त्व है। विकास के ग़ैरपूंजीवादी पथविषयक लेनिन के विचारों की सामयिकता इससे और भी बढ़ जाती है कि पूंजीवाद के वैचारिक कर्णधार नवस्थापित राज्यों के जनों के मन में यह बात जमाने की हरसंभव कोशिश कर रहे हैं कि विकास के जिस पथ से पश्चिमी यूरोप के पूंजीवादी देश गुज़रे हैं, उसे उन्हें भी अवश्यमेव तय करना होगा। जो जन राजनीतिक स्वाधीनता पा चुके हैं, वे इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ रहे हैं कि उनके देश किस पथ पर चलते हुए शीघ्रातिशीघ्र प्रगति कर सकते हैं। "उपनिवेशवाद के उत्पीड़न से मुक्त बन चुके देश कौनसा रास्ता अपनायेंगे – पूंजीवादी रास्ता या ग़ैरपूंजीवादी रास्ता – यही आज उनकी जनता के सामने खड़ा एक मूलभूत प्रश्न है," सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है।

रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की आठवीं कांग्रेस में पार्टी के दूसरे कार्यक्रम से संबंधित रिपोर्ट पर समापन भाषण करते हुए व्ला० इ० लेनिन ने कहा था कि "विभिन्न राष्ट्र एक ही ऐतिहासिक दिशा में बढ़ रहे हैं, मगर बहुत ही अलग-अलग टेढ़े-मेढ़े रास्तों और पगडंडियों से।" इसका यह मतलब हुआ कि आम नियमसंगतियों का पालन करने पर समाजवाद की ओर बढ़ने में विविधता का होना अनिवार्य है।

कम्युनिस्ट और मज़दूर पार्टियों के सम्मेलनों में निम्न नियमसंगतियों का उल्लेख किया गया है: सर्वहारा क्रांति में और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना में, चाहे उनका तरीक़ा कोई भी क्यों न हो, मेहनतकश जनसामान्य का मज़दूर वर्ग द्वारा नेतृत्व किया जाना, जिसका संगठन-स्रोत मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी है; किसानों के अधिकांश भाग और अन्य मेहनतकश तबक़ों के साथ मज़दूर वर्ग का सहबंध; मुख्य उत्पादन साधनों पर पूंजीवादी स्वामित्व का अन्त और सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना; कृषि का शनैः शनैः समाजवादी रूपान्तरण; समाजवाद तथा कम्युनिज़्म के निर्माण और मेहनतकशों के जीवनस्तर के उत्थान की ओर लक्षित अर्थव्यवस्था का योजनाबद्ध विकास; विचारधारा तथा संस्कृति के क्षेत्र में समाजवादी क्रांति और मज़दूर वर्ग, श्रमिक जनता तथा समाजवाद के ध्येय के प्रति निष्ठावान लोक बुद्धिजीवी समुदाय का विकास; राष्ट्रीय उत्पीड़न का ख़ात्मा और जनगण के बीच समानता तथा मैत्री की स्थापना; अन्य देशों के मज़दूर वर्ग के साथ देश के मज़दूर वर्ग की एकता, यानी सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद। ये नियमसंगतियां समाजवाद के पथ पर अग्रसर होनेवाले सभी राष्ट्रों के विकास में पायी जाती हैं।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाजवादी क्रांति तथा समाजवाद निर्माण के सामान्य नियमों को सृजनात्मक ढंग से लागू करने, हर देश की ठोस परिस्थितियों को ध्यान में रखने और अन्य देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों की नीति तथा कार्यनीति की यांत्रिक नक़ल न करने की अपेक्षा करता है।

ऐसी ही अपेक्षा विकास के ग़ैरपूंजीवादी पथ की समस्याओं के सिलसिले में भी – बेशक उसके मूलभूत सिद्धान्तों पर अडिग रहते हुए – की जाती है। समस्याओं से मतलब इस पथ के रूपों की विविधता, उसपर आगे बढ़ने की रफ़्तार और मंज़िलों से है।

मिसाल के लिए, यदि कोई जन सोवियत मध्य एशियाई जनतंत्रों के ऐतिहासिक अनुभव को आंख मूंदकर दोहराने लगे, तो यह ठीक न होगा। इन जनतंत्रों ने ही सबसे पहले विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ अपनाया था और एक ही पीढ़ी के जीवनकाल में पूंजीवाद को लांघकर सामन्तवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण किया था। इसी प्रकार मंगोलियाई लोक जनतंत्र के अनुभव की भी यांत्रिक नक़ल ठीक नहीं है, जिसने भी यही पथ तय किया है।

विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ तय करते समय मध्य एशियाई जनतंत्र एक ऐसे राज्य में शामिल थे, जहां समाजवादी क्रांति के तुरंत बाद सोवियत सत्ता के रूप में सर्वहारा अधिनायकत्व स्थापित हो चुका था। सोवियत देश के अन्य भागों की तरह इन जनतंत्रों में भी शोषण के तौर-तरीक़े और उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व ख़त्म कर दिये गये थे और नगरों तथा गांवों में समाजवादी परिवर्तन शुरू हो चुके थे। इसके अलावा यहां ग़ैरपूंजीवादी विकास की सारी प्रक्रिया स्थानीय कम्युनिस्ट संगठनों की देखरेख में संपन्न हुई, जो रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के अंग थे।

औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए कुछ देशों में ग़ैरपूंजीवादी विकास और समाजवाद की ओर बढ़ने का एक अलग ही तरीक़ा अपनाया जाता है। इस तरीक़े के अनुसार, सर्वहारा को सत्तारूढ़ बनाये बिना उपरोक्त लक्ष्यों को पाने की कोशिश की जाती है। मगर यह तरीक़ा तभी सफल हो सकता है, जब समाजवादी राज्यों तथा विश्व समाजवादी प्रणाली का सहारा लिया जाये और अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर तथा कम्युनिस्ट आन्दोलन के साथ मिलकर काम किया जाये।

नवस्वाधीन देशों के ग़ैरपूंजीवादी पथ की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि उसपर चलते हुए दो कार्यभारों – उपनिवेशवादविरोधी संघर्ष और जनवादी शासन की स्थापना के लिए संघर्ष – को, जो आपस में गुंथे हुए और परस्परसंबद्ध हैं, साथ-साथ पूरा किया जाता है। इन देशों में राष्ट्रीय जनवादी क्रांतियां सफलतापूर्वक संपन्न हो रही हैं।

जीवन पुष्टि करता है कि विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ अपनाने में ही अल्पविकसित देशों का भविष्य निहित है, क्योंकि यह राष्ट्रीय स्वाधीनता, प्रगति और उन्नति का पथ है।

६. सोवियत संघ में राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद रूस के सभी जनों की ऐतिहासिक नियति ने सर्वथा नयी करवट ली। इस क्रांति ने राष्ट्रीय प्रश्न के नये, अभूतपूर्व समाधान के लिए परिस्थितियां और आधार तैयार कर दिया था।

सोवियत सत्ता की स्थापना के पहले ही दिन, यानी २५ अक्तूबर (७ नवंबर), १९१७ को ही सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने "मज़दूरों, सिपाहियों और किसानों के नाम" अपने संदेश में कहा कि सोवियत सत्ता रूस में रहनेवाले सभी राष्ट्रों और जातियों को आत्मनिर्णय का सच्चा अधिकार देगी।

इसी कांग्रेस में स्वीकृत "शांति के बारे में आज्ञप्ति" ने जनता की इच्छाभिव्यक्ति को स्वाधीनता या किसी राज्य में स्वेच्छया सम्मिलित होने का आधार घोषित किया। "यदि कोई भी राष्ट्र बलात् किसी दूसरे राज्य की सीमाओं के भीतर रखा जाता है," इस आज्ञप्ति में कहा गया था, "यदि उसकी इच्छा के बावजूद... उसे इस बात का अधिकार नहीं दिया जाता कि वह स्वतंत्र मतदान द्वारा... और रंचमात्र भी दबाव के बिना इस बात का फ़ैसला कर सके कि एक राज्य की हैसियत से उसके अस्तित्व के क्या रूप होंगे, तो इस प्रकार किसी राष्ट्र को अपने में शामिल

कर लेना संयोजन है, अर्थात् दूसरे के राज्य पर क़ब्ज़ा करना और हिंसा है।"

इस क्षेत्र के सैद्धान्तिक प्रश्नों को हल करने के लिए राष्ट्रों से संबंधित मामलों की जन कमिस्सारियत बनायी गयी। इस तरह का निकाय विश्व के किसी भी पूंजीवादी राज्य में न था। वह रूस के विराट क्षेत्र में रहनेवाले सभी राष्ट्रों और जातियों के हितों का प्रतिनिधित्व करनेवाला सर्वोच्च कार्यपालक निकाय था।

२ (१५) नवंबर, १९१७ को इतिहासप्रसिद्ध "रूस के जनों के अधिकारों का घोषणापत्र" जारी किया गया। उसमें निम्न अधिकारों और सिद्धान्तों की घोषणा की गयी थी:

"१. रूस के सभी जनों की समानता और सर्वसत्ता।

२. अलग होने और स्वतंत्र राज्य की स्थापना तक रूस के जनों का स्वतंत्र आत्मनिर्णय का अधिकार।

३. सभी और हर तरह के राष्ट्रीय तथा धार्मिक विशेषाधिकारों और पाबंदियों की समाप्ति।

४. रूस में रहनेवाले अल्पसंख्यक राष्ट्रों, जातियों तथा नृजातीय समूहों का स्वतंत्र विकास।"

राष्ट्रीय अविश्वास, झूठ और उकसावों की नीति का अन्त किया गया और परस्पर विश्वास, सभी राष्ट्रों और जातियों के प्रति आदर की नीति अपनायी गयी। घोषणापत्र से पता चलता है कि महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति ने राष्ट्रों की मुक्ति के ध्येय में कितनी बड़ी भूमिका निभायी थी।

घोषणापत्र के विचारों की गूंज सोवियत शासन के राष्ट्रीय प्रश्नसंबंधी अन्य प्रारंभिक दस्तावेज़ों में भी सुनायी दी। २० नवंबर (३ दिसंबर), १९१७ को रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र की जन कमिस्सार परिषद ने "रूस और पूर्व के सभी मेहनतकश मुसलमानों के नाम संदेश" जारी किया। उसमें कहा गया था, "लूटपाट और हिंसा का पूंजीवादी राज ढह रहा है। साम्राज्यवादी लुटेरों के पैरों तले ज़मीन जल रही है। इन महान घटनाओं को देखते हुए हम आप, रूस और पूर्व के मेहनतकशों और हतभाग्य मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहते हैं...

"आज से आपके धर्म-विश्वासों और रिवाजों, आपकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक संस्थाओं को स्वतंत्र तथा अनतिक्रम्य घोषित किया जाता है। अपने राष्ट्रीय जीवन की व्यवस्था स्वतंत्र और निर्बाध रूप से कीजिये। आपको इसका अधिकार है। याद रखिये कि क्रांति और उसके निकायों और मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों के प्रतिनिधियों की सोवियतों की शक्ति रूस के सभी जनों के अधिकारों की भांति आपके अधिकारों की भी रक्षा करती है।"

उसी संदेश में यह भी घोषित किया गया था कि ईरान और तुर्की के विभाजन के बारे में ज़ार द्वारा संपन्न और अस्थायी सरकार द्वारा पुष्ट की गयी गुप्त संधियां भंग और नष्ट कर दी गयी हैं।

भूतपूर्व उत्पीड़ित जनों को संबोधित इस दस्तावेज़ में राष्ट्रीय नीतिविषयक लेनिनीय सिद्धान्त विशेष स्पष्टता के साथ व्यक्त हुए थे। इसीलिए उसे इतना अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ।

रूस के मुसलमानों की अभिलाषा को ध्यान में रखते हुए रूसी संघ की जन कमिस्सार परिषद ने दिसंबर, १९१७ में फ़ैसला किया कि उस्मान का कुरानशरीफ़, जो अब तक पेत्रोग्राद के राजकीय सार्वजनिक पुस्तकालय में सुरक्षित था, क्षेत्रीय मुस्लिम कांग्रेस को दे दिया जाये। आज यह कुरान उज़्बेक जनतंत्र की राजधानी ताशक़न्द के इतिहास संग्रहालय में है।

उक्रइनी जनता के नाम दिसंबर, १९१७ के संदेश में ज़ारशाही और बूर्जुआ वर्ग द्वारा उत्पीड़ित सभी राष्ट्रों और जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की पुनः पुष्टि की गयी, जिसमें उनके रूस से अलग होने का अधिकार भी शामिल था।

दिसंबर, १९१७ में जन कमिस्सार परिषद ने फ़िनलैण्ड की स्वाधीनता को मान्यता दी, जो पहले ज़ारकालीन "एक और अखंड रूस" का हिस्सा था। तब से फ़िनलैण्ड एक स्वतंत्र राज्य है।

जनवरी, १९१८ में सोवियतों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने लेनिन द्वारा लिखित "मेहनतकशों और शोषित जनों के अधिकारों के घोषणापत्र" की पुष्टि की, जिसमें कहा गया था कि "स्वतंत्र राष्ट्रों के स्वतंत्र सहबंध के आधार पर सोवियत रूसी जनतंत्र को सोवियत राष्ट्रीय राज्यों का संघ (फ़ेडरेशन) बनाया जाता है।" कांग्रेस ने मज़दूरों और किसानों को अपने सम्मेलनों में यह तय करने का अधिकार दिया कि वे

संघीय सरकार और अन्य संघीय सोवियत संस्थाओं में भाग लेना चाहते हैं कि नहीं और अगर चाहते हैं, तो किन शर्तों पर। कांग्रेस के समापन अधिवेशन में व्ला० इ० लेनिन ने सोवियत संघ (सोवियत फ़ेडरेशन) की घोषणा की विश्वव्यापी महत्त्व रखनेवाली घटना पर टिप्पणी करते हुए कहा था, "हम विभाजन के प्राचीन रोमन क्रूर क़ानून के अनुसार नहीं, बल्कि जीवन्त हितों और वर्गीय चेतना की अटूट कड़ियों से सभी मेहनतकशों को जोड़कर राज कर रहे हैं। हमारा संघ, हमारा नया राज्य ऐसे किसी भी दमनकारी शासन से अधिक मज़बूत है, जो जनों को साम्राज्यवादियों के लिए लाभकारी कृत्रिम राज्यों में झूठ और डंडे के बल पर एकजुट बनाता है।"

लेनिनवाद की इन प्रस्थापनाओं को अपना आधार बनाकर कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण के कार्य का निदेशन किया। स्वायत्त जनतंत्र और प्रदेश बनाये गये, जैसे तुर्किस्तान स्वायत्त जनतंत्र, जिसमें मध्य एशिया और क़ज़ाख़स्तान का एक हिस्सा शामिल थे। उक्रइना, बेलोरूस और काकेशियापार के जनों ने भी अपने स्वतंत्र संघीय जनतंत्र बनाये।

इन जनतंत्रों के आपसी और रूसी संघ के साथ संबंधों का आधार संधिजनित सोवियत फ़ेडरेशन था। इसका मतलब यह था कि सर्वसत्तासंपन्न जनतंत्रों के आपसी संबंध अन्तर्राज्यीय संबंधों जैसे थे। वे ऐसे समानाधिकारप्राप्त जनतंत्रों के आपसी संबंध थे, जो बाह्य शत्रुओं के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष और समाजवाद निर्माण के कार्यभारों की पूर्ति के लिए एकजुट हुए थे।

जुलाई, १९१८ में रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र का संविधान पास किया गया। यह राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण का नया चरण था। संविधान ने राष्ट्रों की स्वतंत्रता और समानता को क़ानूनी मान्यता प्रदान की। उसमें नसल या राष्ट्रिकता के आधार पर नागरिकों को किसी प्रकार के विशेषाधिकार और सुविधाएं दिये जाने और इसी तरह अल्पसंख्यक राष्ट्रों और जातियों के किसी भी प्रकार के उत्पीड़न को सर्वथा अमान्य ठहराया गया। इस प्रकार विश्व इतिहास में पहली बार जनों के आत्मनिर्णय, समानता और स्वतंत्रता के अधिकार को वैधानिक रूप से घोषित और व्यवहार में क्रियान्वित किया गया।

अक्तूबर, १९१७ से पहले ही व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था कि बोल्शेविक राष्ट्रों के ऐसे स्वैच्छिक संघ की स्थापना के लिए लड़ते हैं, जो किसी राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध उकसाया जाना बर्दाश्त नहीं करता और जो राष्ट्रों की पूर्ण स्वैच्छिकता तथा सहमति पर आधारित है। सोवियत सत्ता की स्थापना के बाद उन्होंने बारंबार याद दिलायी कि यह प्रश्न राष्ट्रों को स्वयं तय करना है कि वे एकीभूत संघ राज्य में शामिल होंगे कि नहीं। "देनीकिन पर विजय के सिलसिले में उक्रइनी मज़दूरों तथा किसानों के नाम पत्र" में भी उन्होंने इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया था।

दिसंबर, १९२२ में सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना की गयी, जो सोवियत जनों के जीवन की एक महानतम घटना थी। इससे पहले निम्न बंधु सोवियत जनतंत्रों का स्वतंत्र अस्तित्व था: रूसी संघात्मक जनतंत्र, जिसमें कई स्वायत्त जनतंत्र शामिल थे, उक्रइनी जनतंत्र, बेलोरूसी जनतंत्र और काकेशियापारीय संघात्मक जनतंत्र, जिसमें जार्जिया, आरमीनिया और आज़रबैजान के सोवियत जनतंत्र शामिल थे।

सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना अक्तूबर क्रांति के तुरंत बाद के बजाय कई वर्ष बाद होना सांयोगिक घटना न थी। विदेशी सैनिक हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के वर्षों (१९१८–१९२०) में सोवियत जनतंत्रों के बीच घनिष्ठ सैनिक-राजनीतिक संबंध क़ायम हो चुके थे। लेनिन द्वारा १९१९ में तैयार किये गये बंधु समाजवादी जनतंत्रों की "सैनिक एकता के बारे में केन्द्रीय समिति के निर्देशों के मसविदे" में कहा गया था कि साझे शत्रु विश्व साम्राज्यवाद तथा उसके द्वारा समर्थित यमदूतसभाई और सफ़ेद गार्ड प्रतिक्रांतिकारियों के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक संघर्ष की सफलता के लिए लाल सेना की सभी टुकड़ियों का एक ही कमान के मातहत होना और समाजवादी जनतंत्रों की सभी शक्तियों तथा साधनों के इस्तेमाल में केन्द्रीकरण के सिद्धान्त का सख़्ती से पालन किया जाना बहुत ज़रूरी है।

जनतंत्रों का सैनिक गठबंधन देश के विभिन्न जनों के बीच भ्रातृत्वपूर्ण संबंधों के सुदृढ़ीकरण का आधार और गृहयुद्ध में सोवियत सत्ता की विजय का निर्णायक कारक बना। कहना न होगा कि यह गठ-बंधन जनतंत्रों की संयुक्त सामरिक कार्रवाइयों तक ही सीमित न था।

उसने उनके आर्थिक प्रयासों और अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्णतम शाखाओं को एक सूत्र में पिरोने में भी मदद की।

बाह्य और आन्तरिक प्रतिक्रिया के विरुद्ध संघर्ष की समाप्ति के बाद सोवियत जनतंत्रों का संघटित होने का आन्दोलन और बढ़ गया। उनके एक संघ राज्य में एकजुट होने की आवश्यकता इसलिए भी थी कि सबके साधनों को संकेन्द्रित किये बिना अर्थव्यवस्था की शीघ्रतम बहाली और नये समाजवादी आधार पर निर्माण नहीं किया जा सकता था। स्वयं अपने अनुभव से रूस के जनों को सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ बनाने की आवश्यकता का यक़ीन हो गया था। अतः एक होने का आन्दोलन छेड़ने में पहल उन्होंने ही की।

सोवियत जनतंत्र शत्रुतापूर्ण पूंजीवादी घेरे की परिस्थितियों में समाजवाद का निर्माण कर रहे थे। उनपर किसी भी समय सशस्त्र आक्रमण किया जा सकता था। उनकी आर्थिक नाकेबंदी और राजनयिक बहिष्कार किया जा सकता था। अतः नये आधार पर सोवियत जनतंत्रों के सैनिक प्रयासों को एकजुट करने और सबकी एक ही स्थल तथा नौ सेना बनाने की तात्कालिक आवश्यकता पैदा हुई।

एकीभूत संघ-राज्य का निर्माण आवश्यक होने के साथ-साथ वस्तुगत रूप से संभव भी था। सभी सोवियत जनतंत्रों का एक ही लक्ष्य था – समाजवाद और कम्युनिज़्म का निर्माण। सबकी राजनीतिक व्यवस्था एक ही थी – सोवियत सत्ता के रूप में सर्वहारा अधिनायकत्व, जो अपनी प्रकृति से अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है। इनके अलावा सभी जनतंत्रों का सामाजिक-आर्थिक ढांचा भी एक सा ही था – उत्पादन साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व और समाजवादी अर्थप्रणाली।

संघ-राज्य में सभी सोवियत जनतंत्रों का एकताबद्ध होना कम्युनिस्ट पार्टी की भूतपूर्व वैमनस्य, अलगाव तथा वास्तविक असमानता के उन्मूलन और विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के परस्पर सन्निकटन की ओर लक्षित राष्ट्रीय नीति के सुसंगत क्रियान्वयन का परिणाम था।

१९२२ में स्वतंत्र सोवियत जनतंत्रों के भावी परस्परसंबंधों की दिशा का निर्धारण करने के लिए रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बो०) और सोवियत जनतंत्रों की कम्युनिस्ट पार्टियों की केन्द्रीय समितियों के प्रतिनिधियों का एक आयोग नियुक्त किया गया। उसे व्ला० इ० लेनिन के इस विचार

को आधार बनाकर अपनी सिफ़ारिशें तैयार करनी थीं कि एकीभूत संघ-राज्य में संघटित होने के मामले में रूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र, काकेशियापारीय संघात्मक जनतंत्र, उक्रइनी सोवियत समाजवादी जनतंत्र और बेलोरूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र, सब समान होंगे।

३० दिसंबर, १६२२ को मास्को में सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की सोवियतों की पहली कांग्रेस शुरू हुई। उसने सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ (सोवियत संघ) की स्थापना से संबंधित घोषणापत्र तथा संश्रय संधि का अनुमोदन किया और सर्वोच्च विधायी निकाय – सोवियत संघ की केन्द्रीय कार्यकारिणी – के सदस्य चुने।

बहुराष्ट्रिक समाजवादी राज्य सोवियत संघ का निर्माण स्वैच्छिकता और हर सोवियत जनतंत्र की राष्ट्रीय सर्वसत्ता की सुरक्षा के आधार पर हुआ।

सोवियतों की दूसरी कांग्रेस (१६२४) में स्वीकृत सोवियत संघ के संविधान में तय किया गया कि विदेश नीति, युद्ध और शांति की घोषणा, सोवियत संघ तथा जनतंत्रों की सीमाओं का निर्धारण, सोवियत संघ में नये जनतंत्रों का सम्मिलन, सशस्त्र सेनाएं, संचार तथा परिवहन और अर्थव्यवस्था का नियोजन जैसे प्रश्न सोवियत संघ के सर्वोच्च सत्ता निकायों के अधिकारक्षेत्र में होंगे। संविधान में कहा गया था कि प्रत्येक जनतंत्र को संघ से अलग होने का अधिकार है। संघ में सम्मिलन के प्रश्न पर कहा गया था कि कोई भी मौजूदा सोवियत समाजवादी जनतंत्र और इसी तरह भविष्य में गठित होनेवाले जनतंत्र भी सोवियत संघ में शामिल हो सकते हैं।

सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना का विश्वव्यापी ऐतिहासिक महत्त्व था। "हमारे राज्य के इतिहास में सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना को अपने राजनीतिक महत्त्व और सामाजिक-आर्थिक परिणामों की दृष्टि से बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है", सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था। सोवियत संघ के गठन ने समाजवादी राष्ट्रों और जातियों के विकास तथा उत्थान के लिए एक संघ राज्य में एकताबद्ध हुए सभी जनों के सर्वांगीण विकास के लिए अभूतपूर्व संभावनाएं प्रस्तुत कीं। सोवियत संघ एक ऐसा प्रकाशस्तंभ बन गया, जो विश्व के सभी जनों को शोषण तथा उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष का रास्ता दिखाता है। मानवजाति के

इतिहास में पहली बार यह सिद्ध किया गया कि राष्ट्रों की मैत्री और समानता के आधार पर विशाल बहुराष्ट्रिक राज्य बनाया जा सकता है। इस तरह साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय उत्पीड़न की उसकी नीति पर ज़बर्दस्त प्रहार किया गया।

जुलाई, १९२३ में सोवियत संघ की केन्द्रीय कार्यकारिणी ने सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना के संबंध में विश्व के सभी राष्ट्रों और सरकारों के नाम अपने एक संदेश में कहा था कि सोवियत जनतंत्रों की जनता के बंधुत्वपूर्ण सहयोग के आधार पर निर्मित संघ-राज्य सभी राष्ट्रों के साथ शांति बनाये रखने को अपना लक्ष्य मानता है। "उत्पीड़ित जनों का सहज मित्र होने के कारण सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ सभी राष्ट्रों के साथ शांति, मैत्री और आर्थिक सहयोग के संबंध चाहता है," संदेश में कहा गया था। उसमें इसका भी उल्लेख था कि सोवियत संघ सारे विश्व के मेहनतकशों के हितों की रक्षा और राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग के विकास में भरपूर योग देगा।

सोवियत संघ की स्थापना की पचासवीं वर्षगांठ की तैयारियों से संबंधित सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के प्रस्ताव (फ़रवरी, १९७२) और सोवियत संघ की पचासवीं वर्षगांठ से संबंधित लेओनीद ब्रेज्नेव की रिपोर्ट (दिसंबर, १९७२) में सोवियत संघ की स्थापना तथा विकास की नियमसंगतियों का गहन, विज्ञानसम्मत विश्लेषण किया गया है और कहा गया है कि सोवियत देश के जनों के जीवन की यह ऐतिहासिक घटना समस्त मानवजाति की सामाजिक प्रगति की एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल और लेनिनीय राष्ट्रीय नीति की महती विजय थी।

संघ-राज्य के निर्माण की अगली मंज़िलें इस प्रकार थीं:

– १९३९ में पश्चिमी उक्रइना और पश्चिमी बेलोरूस के जनों ने उन्हें सोवियत संघ में लिये जाने और उक्रइनी तथा बेलोरूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र में शामिल किये जाने की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर लिया गया;

– मार्च, १९४० में फ़िनलैण्ड के उस भाग को, जो सोवियत संघ में सम्मिलित हो गया था, और कारेलिया स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र को मिलाकर नया संघीय जनतंत्र – कारेलो-फ़िन सोवियत समाजवादी जनतंत्र – बनाया गया (१९५६ में इस जनतंत्र के मेहनतकशों के अनुरोध

पर सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत ने नया क़ानून पास करके कारेलो-फ़िन सोवियत समाजवादी जनतंत्र को कारेलिया स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र बना दिया जो रूसी संघ का अंग बना);

– १६४० में लिथुआनिया और लाटविया की जन सेइमों (संसदों) और एस्तोनिया के राजकीय दूमा (संसद) ने अपने जनतंत्रों में सोवियत सत्ता की पुनर्स्थापना की घोषणा की (१६१६ में विदेशी हस्तक्षेपकारियों की मदद से स्थानीय बूर्जुआ वर्ग ने अक्तूबर क्रांति के बाद यहां स्थापित सोवियत सत्ता को उलट दिया था)। उसी वर्ष सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत ने लिथुआनिया, लाटविया और एस्तोनिया के जनगण की मांग पर उन्हें सोवियत समाजवादी जनतंत्रों के रूप में सोवियत संघ में शामिल कर लिया। बाल्टिक प्रदेश में तीन सोवियत जनतंत्रों की स्थापना और सोवियत संघ में उनके स्वैच्छिक प्रवेश से उनकी तीव्र आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति सुनिश्चित बनी, फ़ासिस्ट जर्मनी के आक्रामक इरादों को धक्का पहुंचा और विश्व में शांति के सबसे बड़े गढ़ सोवियत संघ की स्थिति मज़बूत बनी;

– १६४० में रूमानिया ने सोवियत संघ को उसकी भूमि – बेस्सराबिया – लौटा दी और स्वेच्छा से बुकोवीना का उत्तरी हिस्सा भी छोड़ दिया, जिसमें उक्रइनी लोग रहते थे। बेस्सराबिया और मोल्दाविया स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र के मेहनतकशों की इच्छा के अनुकूल उसी वर्ष बेस्सराबिया को मोल्दाविया स्वायत सोवियत समाजवादी जनतंत्र में शामिल करने और मोल्दाविया सोवियत समाजवादी जनतंत्र बनाने का क़ानून पास किया गया। बुकोवीना के उत्तरी भाग और बेस्सराबिया के ख़ोतिन, अक्केरमान तथा इज़माईल ज़िलों को उक्रइनी सोवियत समाजवादी जनतंत्र में शामिल किया गया।

आज सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ में १५ समानाधिकारप्राप्त संघीय सोवियत जनतंत्र, २० स्वायत्त जनतंत्र, ८ स्वायत्त प्रदेश और १० जातीय क्षेत्र शामिल हैं। संघीय जनतंत्रों में से हर एक सर्वसत्तासंपन्न राज्य है और हर किसी का अपना सर्वोच्च सत्ता निकाय, संविधान, राष्ट्रीय ध्वज, राज्यचिह्न और राष्ट्रगान है।

आबादी की बनावट की दृष्टि से हर सोवियत जनतंत्र बहुराष्ट्रिक है।

सबसे अधिक लोग रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र में रहते हैं। यहां की ८२.८ प्रतिशत आबादी रूसी है। यहां तातार, उक्रइनी, चुवाश, बाश्कीर, आदि, ४० राष्ट्रों और जातियों के लोग रहते हैं। उक्रइनी जनतंत्र में ७४.९ प्रतिशत लोग उक्रइनी और शेष रूसी, यहूदी, बेलोरूसी, पोल, मोल्दव, बुल्गार, आदि हैं। क़ज़ाख़ जनतंत्र में क़ज़ाख़ लोगों की आबादी केवल ३२.४ प्रतिशत है। शेष आबादी अन्य राष्ट्रों और जातियों के लोगों की है।

कतिपय सोवियत जनतंत्रों की आबादी की राष्ट्र तथा जातिगत बनावट का विश्लेषण करने पर एक दिलचस्प तथ्य सामने आता है। आरमीनिया जनतंत्र की ८८.६ प्रतिशत आबादी आरमीनियाई है। मगर सारे देश में आरमीनियाई लोगों की कुल जितनी आबादी है, उसका लगभग आधा भाग आरमीनिया से बाहर, मुख्यतः जार्जिया और आज़रबैजान में रहता है। या फिर तातार स्वायत्त जनतंत्र को ही लें। उसमें रहनेवाले तातारों की संख्या देश की कुल तातार आबादी की एक तिहाई ही है। शेष तातार अन्य जनतंत्रों में रहते हैं।

सोवियत संघ में ऐसे अनेक राष्ट्रों और जातियों के लोग भी रहते हैं, जिनका बहुलांश अन्य देशों का वासी है, जैसे पोल, बुल्गार, कोरियाई, यूनानी, हंगेरियाई, उइग़ुर, कुर्द, चीनी, दुंगान, आदि।

पिछले कुछ दशकों से जनतंत्रों की आबादी की राष्ट्र तथा जातिगत बनावट में विशेषतः तीव्र परिवर्तन आने लगे हैं। इसका कारण जनतंत्रों में उत्पादक शक्तियों का तेज़ विकास है – नये-नये कारख़ाने, बिजलीघर बनाये जा रहे हैं, नयी खानें चालू की जा रही हैं, परती ज़मीनों को कृषियोग्य बनाया जा रहा है और सिंचाई प्रणालियों का विस्तार किया जा रहा है। मिसाल के लिए, साइबेरिया में विश्व के सबसे बड़े ब्रात्स्क पनबिजलीघर के निर्माण में ही ५० से अधिक जातियों के लोगों ने भाग लिया।

अब तक हमने राज्य व्यवस्था के बारे में, एकीभूत राज्य में विभिन्न जनों के संघबद्ध होने के बारे में ही बताया। मगर सोवियत संघ के विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उत्थान और उनके एक दूसरे के निकट आने का इतिहास भी कम शिक्षाप्रद नहीं है।

७. राष्ट्रों का उत्थान तथा सन्निकटन

समाजवादी राष्ट्रों का उत्थान सुनिश्चित करने के लिए सोवियत सत्ता के आरंभिक वर्षों में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी और राज्य ने सोवियत जनतंत्रों के आर्थिक विकास को समान स्तर पर लाने की नीति अपनायी थी। उसका मुख्य कार्यभार यह था कि पूंजीवाद से विरासत में मिली वास्तविक असमानता को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाये।

नये समाजवादी समाज की प्रकृति ने ही इस कार्यभार की पूर्ति के उपाय सुझाये। ये थे विभिन्न जनों के बीच सहयोग, एक दूसरे की निःस्वार्थ सहायता और मुख्यतः उन्नत रूसी राष्ट्र द्वारा भूतपूर्व उत्पीड़ित जनों की सहायता। केवल इसी तरह सोवियत संघ के छोरवर्ती जनतंत्रों तथा प्रदेशों के पिछड़ेपन और देश के विभिन्न भागों के विकास स्तरों में मौजूद अन्तर को ख़त्म किया जा सकता था।

कम्युनिस्ट पार्टी की पन्द्रहवीं कांग्रेस (१९२७) के सोवियत संघ की पहली पंचवर्षीय आर्थिक योजना (१९२८–१९३२) से संबंधित निर्देशों में कहा गया था कि देश के छोरवर्ती और पिछड़े इलाक़ों के आर्थिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन को शनैः शनैः ख़त्म करने की आवश्यकता को देखते हुए पहली पंचवर्षीय योजना को इन इलाक़ों की आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति से संबंधित समस्याओं पर विशेष ध्यान देना है। इसीलिए इस

योजना में इन इलाक़ों की अर्थव्यवस्था और संस्कृति के विकास के लिए कहीं ऊंचे लक्ष्य निर्धारित किये गये।

पार्टी की सोलहवीं कांग्रेस (१९३०) के निर्णय भी इसी लेनिनवादी नीति पर आधारित थे। कांग्रेस ने सुझाव दिया कि देश के तीव्र उद्योगीकरण के लिए बहुत जरूरी है कि पूर्व में भी बड़े पैमाने पर कोयला निकासी तथा लौह धातुकर्म उद्योगों की स्थापना की जाये और स्थानीय कच्चे मालों के उपयोग पर आधारित अलौह धातुकर्म, कपड़ा, आदि उद्योगों के विकास में तेज़ी लायी जाये।

पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान हुए विकास का लेखाजोखा करने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी की सत्तरहवीं कांग्रेस (१९३४) इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सोवियत संघ के ग़ैर-रूसी इलाक़ों में काफ़ी अधिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति हुई है और वे तेज़ी से अपना पिछड़ापन ख़त्म कर रहे हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना (१९३३–१९३७) में किये जानेवाले नवनिर्माण के कार्यक्रम में कहा गया था कि "पुराने औद्योगिक केंद्रों के विकास के आधार पर देश के पूर्वी इलाक़ों (उराल, पश्चिमी और पूर्वी साइबेरिया, बाश्कीरिया, सुदूर पूर्व, क़ज़ाख़स्तान और मध्य एशिया) में नये औद्योगिक केन्द्र बनाये जा रहे हैं और मशीननिर्माण, धातुकर्म, कोयला, तेल, विद्युत ऊर्जा तथा अन्य उद्योग शाखाएं तेज़ी से बढ़ रही हैं। भारी उद्योग के नये उद्यमों के निर्माण के लिए निर्धारित पूंजी का लगभग आधा हिस्सा पूर्वी इलाक़ों में ख़र्च किया जा रहा है।"

एक उदाहरण देकर इसे समझायें। दूसरी पंचवर्षीय योजना में बनायी जानेवाली १५ सूती कपड़ा मिलों में से १० का निर्माण मध्य एशिया, साइबेरिया और काकेशियाई जनतंत्रों में किया गया, जिसकी वजह से, मिसाल के लिए, मध्य एशिया में सूती कपड़े का उत्पादन १६ गुना बढ़ा, जबकि सारे सोवियत संघ में औसत वृद्धि केवल दोगुनी हुई। इस तरह इन इलाक़ों में सूती कपड़ा उद्योग का मज़बूत आधार तैयार किया गया।

पार्टी की अठारहवीं कांग्रेस (१९३९) ने तीसरी पंचवर्षीय योजना में उत्पादक शक्तियों के वितरण के मुख्य लक्ष्यों के अनुसार ग़ैर-रूसी जनतंत्रों और प्रदेशों का आगे भी आर्थिक तथा सांस्कृतिक उत्थान करते रहने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कांग्रेस ने फ़ैसला किया कि पूर्वी और मध्य एशियाई इलाक़ों

में कोयला तथा तेल उद्योगों का विस्तार, अलौह धातुकर्म तथा हल्के उद्योगों के उद्यमों का निर्माण, देश के मध्यवर्ती भागों और पश्चिमी साइबेरिया को मध्य एशिया से जोड़नेवाली रेलवे लाइनों के जाल का विस्तार और भूगर्भीय गैस की निकासी का समारंभ किया जाये।

राष्ट्रों की असमानता के उन्मूलन, उनके उत्थान और सन्निकटन के लिए आवश्यक भौतिक और सामाजिक आधार तैयार करने के उद्देश्य से ग़ैर-रूसी जनतंत्रों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति का देश के मध्यवर्ती क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति से भी अधिक तेज़ी से विकास करने पर पार्टी की आगामी कांग्रेसों में भी ज़ोर दिया गया।

मगर इन सब निर्णयों को क्रियान्वित कैसे किया गया?

निम्न आंकड़ों से इस प्रश्न का उत्तर पाया जा सकता है। अगर १९७३ में रूसी संघात्मक सोवियत समाजवादी जनतंत्र का कुल उत्पादन १९१३ की अपेक्षा ११३ गुना अधिक था, तो सोवियत संघ के अस्तित्व के पचास वर्षों में, यानी १९२२ से क़ज़ाख़स्तान का कुल उत्पादन ६०० गुना, क़िर्ग़िज़स्तान का ४०० गुना, ताजिकिस्तान का ५०० गुना और उज़्बेकिस्तान का २४० गुना बढ़ा यह प्रवृत्ति दसवीं पंचवर्षीय योजना के काल (१९७६–१९८०) में भी जारी रहेगी। देश का कुल औद्योगिक उत्पादन ३५–३९ प्रतिशत बढ़ेगा, मगर आज़रबैजान का ३७–४१ प्रतिशत, बेलोरूस का ३९–४३ प्रतिशत, कज़ाख़स्तान और ताजिकिस्तान का ४०–४४ प्रतिशत, आरमीनिया का ४३–४७ प्रतिशत और मोल्दाविया का ४५–४९ प्रतिशत।

स्थानीय सर्वहारा के विकास से संबंधित आंकड़े भी महत्त्वपूर्ण हैं। १९२८–१९६६ की अवधि में सोवियत संघ में औद्योगिक मज़दूरों की संख्या ६.४ गुना बढ़ी। मगर इसी अवधि में यह वृद्धि उज़्बेकिस्तान में २८ गुना थी। बहुत कुछ इतनी ही वृद्धि पहले के पिछड़े हुए जनतंत्रों में भी हुई है।

१९६६ के बाद के आंकड़े भी ऐसा ही चित्र उपस्थित करते हैं। १९६८ में अधिकांश संघीय जनतंत्रों में मज़दूरों और कर्मचारियों की संख्या कुल रोज़गाररत आबादी के आधे से कहीं अधिक थी। यदि १९६०–१९६८ में सारे देश में मज़दूरों तथा कर्मचारियों की संख्या ३७ प्रतिशत ही बढ़ी, तो यह वृद्धि उज़्बेकिस्तान में ५६ प्रतिशत, जार्जिया में ४७ प्रतिशत,

क़ज़ाख़स्तान में ५१ प्रतिशत, आज़रबैजान में ५८ प्रतिशत, लिथुआनिया में ६२ प्रतिशत, आरमीनिया में ७८ प्रतिशत, मोल्दाविया में ६० प्रतिशत, क़िर्ग़िज़स्तान में ६५ प्रतिशत और ताजिकिस्तान में ६३ प्रतिशत थी।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस के दस्तावेज़ों से पुष्टि होती है कि ग़ैर-रूसी जनतंत्रों में उद्योगों का तीव्र विकास जारी है। यदि आठवीं पंचवर्षीय योजना (१९६५–१९७०) के दौरान रूसी संघ, उक्रइना और एस्तोनिया में उद्योगों के विकास की गति सारे देश की औसत गति जितनी थी और औद्योगिक उत्पादन डेढ़ गुना बढ़ा, तो जार्जिया, लाटविया, मोल्दाविया और कज़ाख़स्तान में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर इससे कहीं अधिक और बेलोरूस, आरमीनिया, लिथुआनिया और क़िर्ग़िज़स्तान में तो ७४–८२.५ प्रतिशत तक थी।

इसके बावजूद कि रूसी संघ के मध्यवर्ती, उत्तर-पश्चिमी, वोल्गा और उराल आर्थिक क्षेत्रों में पूंजीनिवेश करने से सबसे अधिक लाभ होता है, पूंजीनिवेश का स्तर संघीय जनतंत्रों में ही अधिक ऊंचा रहा है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में जहां रूसी संघ और उक्रइना में पूंजीनिवेश १.४ गुना ही बढ़ा, वहां आरमीनिया और क़िर्ग़िज़स्तान में पूंजीनिवेश १.६ गुना, लिथुआनिया, मोल्दाविया और बेलोरूस में १.७ गुना और जार्जिया में १.९ गुना बढ़ाया गया।

ये सब आंकड़े बताते हैं कि सोवियत जनतंत्रों के आर्थिक स्तरों को समान बनाने की प्रक्रिया सफलतापूर्वक चल रही है और सभी राष्ट्रों और जातियों के हितों को निरन्तर ध्यान में रखा जा रहा है।

वास्तविक समानता की बदौलत ही सोवियत संघ में राष्ट्रों के बीच नये प्रकार के संबंध क़ायम हो सके हैं। उनका उत्थान और सन्निकटन सभी जनतंत्रों की बंधुत्वपूर्ण परस्पर सहायता के आधार पर हो रहा है, क्योंकि साझे लक्ष्यों की पूर्ति में सबकी गहरी रुचि है। सभी जनतंत्रों की अर्थव्यवस्थाएं और संस्कृतियां घनिष्ठ रूप से एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और उनके बीच श्रम का ऐसा विभाजन हुआ है कि समस्त देश की एकीभूत समाजवादी अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आ गयी है। हर जनतंत्र सारे देश के लिए और सारा देश हर जनतंत्र के लिए काम कर रहा है।

मिसाल के लिए, मध्य एशियाई जनतंत्र अन्य बंधु जनतंत्रों को उनकी आवश्यकता की ९० प्रतिशत रूई, ८० प्रतिशत करांकूल खालें

ग्रौर दो तिहाई रेशमी कोये सप्लाई करते हैं। उज़्बेकिस्तान हर वर्ष ३० ग्ररब घनमीटर से ग्रधिक गैस का उत्पादन करता है, जिसमें से ग्रधिकांश पांच पाइपलाइनों के ज़रिए, जिनमें दो–बुखारा-उराल तथा मध्य एशिया मध्यवर्ती श्रेल–पाइपलाइनें तो विश्व भर में विशालतम हैं, ग्रन्य जनतंत्रों को भेज दी जाती है। ताजिकिस्तान बंधु जनतंत्रों को रेशमी कपड़ा, ग्रलौह धातुग्रों के सान्द्र, डिब्बेबंद फल तथा सब्ज़ियां, ग्रंगूर की शरावें ग्रौर बहुत से दूसरे माल देता है। सोवियत एस्तोनिया ग्रन्य जन-तंत्रों से प्राप्त तेल, रसायनों, मशीनों, इत्यादि के बदले में उन्हें ग्रपने यहां उत्पादित ६० प्रतिशत फ़ास्फ़ेट खादें ग्रौर दो तिहाई से ग्रधिक बिजली सप्लाई करता है। लाटविया रूसी संघ के उत्तर-पश्चिमी ग्रौर मध्यवर्ती इलाक़ों ग्रौर उक्रइना से ग्रपनी ग्रावश्यकता के ५५ प्रतिशत के क़रीब ग्रौद्योगिक माल ग्रौर कच्ची सामग्रियां पाता है।

इस तरह सोवियत ग्रर्थतंत्र विभिन्न जनतंत्रों की ग्रर्थव्यवस्थाग्रों का सामान्य योगफल नहीं, बल्कि एक ऐसा समग्र ग्रार्थिक तंत्र है, जो एकीभूत योजना के ग्रनुसार ग्रौर देश के समस्त जनों के संयुक्त प्रयासों से विकसित हो रहा है। हर संघीय जनतंत्र की ग्रर्थव्यवस्था सोवियत संघ की ग्रर्थव्यवस्था का ग्रांगिक ग्रौर ग्रविभाज्य हिस्सा है।

किसी भी जनतंत्र की ग्रर्थव्यवस्था की कोई भी शाखा क्यों न हो, उसके विकास में ग्रन्य जनतंत्रों के मेहनतकश भी भाग लेते हैं। हर जनतंत्र केन्द्रीय ग्रार्थिक योजना द्वारा उसके लिए निर्धारित दायित्व को पूरा करते हुए ग्रखिल संघीय कोष में ग्रपना ग्रंशदान करता है ग्रौर बदले में उससे ग्रपनी उत्पादक शक्तियों के ग्रागे विकास के लिए ग्रावश्यक सभी साधन पाता है। यही कारण है कि सारी सोवियत जनता इसमें ग्रभिरुचि रखती है कि इस एकीभूत तंत्र की एक भी कड़ी पिछड़ने न पाये। ग्रन्य बंधु राष्ट्रों तथा जातियों के साथ ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावादी संबंधों के बढ़ने ग्रौर मज़बूत होने के साथ-साथ हर सोवियत जनतंत्र की शक्ति ग्रौर क्षमताएं भी बढ़ती जा रही हैं।

यहां एक बात ग्रौर भी ध्यान में रखनी चाहिए। समाजवाद ग्रौर विशेषत: उसकी ग्रार्थिक प्रणाली तब तक ठीक से काम नहीं कर सकते, जब तक देश उद्योगप्रधान ग्रौर कृषिप्रधान क्षेत्रों में, कच्चा माल सप्लाई करनेवाले ग्रौर उसे संसाधित-विधायित करनेवाले क्षेत्रों में, उन्नत ग्रौर

पिछड़े क्षेत्रों में बंटा हुआ है। समाजवादी प्रणाली और ख़ास तौर से कम्युनिज़्म निर्माण के दौर के लिए बहुत ज़रूरी है कि सभी क्षेत्रों के विकास, उनके परस्परकार्य और परस्परप्रभाव का स्तर ऊंचा हो। इससे समाजवादी देश की प्राकृतिक संपदाओं और सभी उत्पादक शक्तियों के विवेकसंगत इस्तेमाल में और राष्ट्रों के उत्थान तथा क्रमिक सन्निकटन में सहायता मिलती है।

सोवियत जनों की मैत्री की नींव बहुत पहले रखी गयी थी। विदेशी क़ब्ज़ावरों, शोषण तथा उत्पीड़न के विरुद्ध और बहुराष्ट्रिक सोवियत राज्य के निर्माण तथा उन्नति के लिए किये गये संयुक्त संघर्ष में वह बढ़ी और मज़बूत बनी। मगर सच तो यह है कि अगर समाजवाद विजयी न होता और समाजवादी प्रकार के राष्ट्रीय संबंध न बढ़ते, तो यह मैत्री, अपने पूरे अर्थों में, कभी अस्तित्व में न आती।

जनगण की सच्ची मैत्री वास्तव में राष्ट्रीय संबंधों की वह गुणात्मक अवस्था है, जब देश के सभी जन अपने संयुक्त शौर्यपूर्ण प्रयासों से नये समाज – समाजवाद – का निर्माण करते हैं। ज्यों-ज्यों सोवियत जन एक दूसरे के निकट आते जाते हैं और ज्यों-ज्यों उनके परस्पर सहयोग तथा सहायता का पैमाना बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उनकी परस्पर मैत्री भी गहन तथा व्यापक बनती जाती है।

सोवियत जनों के जीवन की इन विशेषताओं का उल्लेख करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव लेओनीद ब्रेज्नेव ने जार्जियाई सोवियत समाजवादी जनतंत्र और जार्जियाई कम्युनिस्ट पार्टी की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर आयोजित समारोह में कहा था, "हम किसी भी जनतंत्र के वासी क्यों न हों, हम सब सोवियत देशभक्त हैं और एक ही समाजवादी मातृभूमि की सन्तान हैं। प्रशान्त महासागर से बाल्टिक सागर तक, उत्तरी हिम महासागर से पामीर और काकेशिया तक फैला यह सारा विराट प्रदेश हमारी भूमि और हमारा पितृदेश है। इस भूमि पर लोगों ने अपने हाथों से जो कुछ बनाया है – शानदार नगर, विराट औद्योगिक संकुल, लहलहाते खेत, बिजलीघरों की शृंखलाएं, आत्मिक संस्कृति की मूल्यवान कृतियां – ये सबके सब हमारे साझे श्रम के फल, हमारी साझी संपत्ति, सारी सोवियत जनता की संपत्ति हैं।"

महाशक्तिवादी अंधराष्ट्रवाद और स्थानीय बूर्जुआ राष्ट्रवाद के, जो एक ही सिक्के के दो पहलू और राष्ट्रीय प्रश्न के मामले में दो रुझानों के परिचायक हैं, ख़ात्मे और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना के प्रसार के लिए अनवरत और अटल संघर्ष राष्ट्रों के उन्नति करने और जनगण की मैत्री के सुदृढ़ बनने की एक मुख्य शर्त है। राष्ट्रीय प्रश्न के मामले में ये दोनों ही रुझान समाजवाद निर्माण को हानि पहुंचाते हैं।

यदि महाशक्तिवादी अंधराष्ट्रवाद देश के अंदर के अल्पसंख्यकों और देश के बाहर के पराधीन जनों पर उत्पीड़क राष्ट्रों के प्रभुत्व को उचित ठहराने का वैचारिक ज़रिया बनता है, तो बूर्जुआ राष्ट्रवाद का घृणित स्वरूप उसकी निम्न विशेषताओं में प्रकट होता है: सत्तारूढ़ बूर्जुआ वर्ग द्वारा अपने संकीर्ण वर्गीय, स्वार्थपरक हितों को सारे राष्ट्र के हित बताना, राष्ट्र के अंदर मौजूद मूलभूत वर्गीय अन्तर्विरोधों को छिपाने की कोशिश करना, अपने राष्ट्र की विशिष्टता का तथा दूसरे राष्ट्रों के मुक़ाबले उत्कृष्टता का प्रचार करना, आदि।

बूर्जुआ राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के बीच कभी कोई मेल नहीं हो सकता। व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "बूर्जुआ राष्ट्रवाद और सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद – ये दो परस्परविरोधी नारे हैं, जिनमें सामंजस्य नहीं हो सकता; ये नारे समूचे पूंजीवादी जगत में विद्यमान दो विशाल वर्ग-शिविरों के अनुरूप हैं और राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में दो नीतियों (बल्कि कहना चाहिए कि दो विश्व-दृष्टिकोणों) को व्यक्त करते हैं।"*

सोवियत संघ की पचासवीं जयन्ती से संबंधित अपनी रिपोर्ट में लेओनीद ब्रेज्नेव ने बताया कि राष्ट्रों के बीच अरसे से विरोधों के लिए वस्तुगत कारण न होने पर भी राष्ट्रवादी पूर्वाग्रह बने रहते हैं, क्योंकि बहुत ही दृढ़ होने की वजह से वे राजनीतिक दृष्टि से अपरिपक्व लोगों की चेतना में बुरी तरह जड़ जमाये रहते हैं। पूंजीवादी विश्व के राजनीतिक और प्रचारक भी राष्ट्रवादी अवशेषों को बढ़ावा देते रहते हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की पच्चीसवीं कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना के प्रसार में प्राप्त उपलब्धियों का उल्लेख

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में आलोचनात्मक अभ्युक्तियां' (१९१३)।

करने के बाद कहा था कि राष्ट्रवाद तथा अंधराष्ट्रवाद की छिटपुट अभिव्यक्तियां, ऐतिहासिक घटनाओं के मूल्यांकन के बारे में वर्गेतर दृष्टिकोण के उदाहरण, स्थानीय संकीर्णता की अभिव्यक्तियां और पुरातनपंथी प्रथाओं का गुणगान करने के प्रयत्न अतीत की बात बनते जा रहे हैं।"

सोवियत संघ में राष्ट्रों की उन्नति तथा उत्कर्ष की मिसाल के तौर पर वैसे तो किसी भी राष्ट्र को लिया जा सकता है। किन्तु हमारी दृष्टि में इसकी एक सर्वोत्तम मिसाल मध्य एशिया का उज़्बेक राष्ट्र है। सोवियत संघ के बहुत से अन्य जनों की भांति उज़्बेक जन ने भी कुछ ही दशकों में अपना सारा आर्थिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ापन दूर कर लिया है, हालांकि अगर परिस्थितियां भिन्न होतीं, तो इसमें शायद सदियां लग जातीं।

उज़्बेकिस्तान की जनता की वास्तविक असमानता का उन्मूलन करते हुए समाजवाद का भौतिक-तकनीकी आधार तैयार किया गया। युद्धपूर्व की पंचवर्षीय योजनाओं के काल में यहां धातुकर्म, मशीननिर्माण, सूती तथा रेशमी कपड़ा, खाद्यवस्तु उत्पादन, आदि अनेक नयी उद्योग शाखाएं पैदा हुईं। चिर्चिक के विद्युत इंजीनियरी कारख़ाने, ताशक़न्द की कपड़ा मिल, कुवासाई के सीमेंट कारख़ाने जैसे अनेक विराट उद्यमों की स्थापना की गयी। जनतंत्र के उद्योग के लिए ऊर्जा आधार भी तैयार किया गया।

जनतंत्र में उद्योगीकरण की अभूतपूर्व प्रगति का अनुमान निम्न तथ्य से लगाया जा सकता है: १९४० तक ही जनतंत्र के भारी उद्योग १९१३ की तुलना में ४.७ गुना अधिक उत्पादन करने लग गये थे।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वर्षों में उज़्बेकिस्तान में उद्योगों ने इतनी तीव्र प्रगति की कि वह देश के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों में गिना जाने लगा। युद्ध के पहले ही दौर में १०० के क़रीब बड़े कारख़ाने को उन इलाक़ों से हटाकर यहां पुनः खड़ा किया गया, जिनपर कुछ समय के लिए शत्रु का क़ब्ज़ा हो गया था। फलस्वरूप कुशल मज़दूरों की संख्या भी बड़ी तेज़ी से बढ़ी।

जनतंत्र में उद्योगों का तेज़ विकास युद्धोत्तर वर्षों में भी जारी रहा। नये उद्यमों की स्थापना के साथ-साथ पहले से मौजूद उद्यमों की क्षमताओं का विस्तार किया गया, उनमें नयी मशीनें लगायी गयीं।

आधुनिक उज़्बेकिस्तान उच्च विकसित औद्योगिक और खेतिहर प्रदेश है। वहां गैस, रसायन, तेल, कोयला, खान, धातुकर्म, मशीननिर्माण,

विद्युतयंत्र, हल्के, खाद्य तथा अन्य उद्योग और निर्माण उद्योग सफलतापूर्वक विकास कर रहे हैं। आज इस जनतंत्र में आधुनिकतम मशीनों से सज्जित १००० से अधिक बड़े औद्योगिक उद्यम हैं। विराटकाय उद्योगों के साथ-साथ अनेक नये नगर भी पैदा हुए हैं, जो जनतंत्र में उद्योग तथा संस्कृति के महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। ये नगर हैं चिर्चिक और नवाई, अंग्रेन और यांगियाबाद, अलमालीक और बेकाबाद, यंगीयेर और यंगीयूल, लेनिन्स्क और नूकुस, ख़्वाजायली और कुवासाई, ताहियाताश और बेरूनी, कूंगिराद और मुइनाक।

उज़्बेकिस्तान ट्रैक्टर, एक्सकेवेटर, कंप्रेशर, पंप, विद्युत वैक्यूम मशीनें, बिजली के तथा अन्य तार और सोवियत संघ में तैयार की जानेवाली टेक्सटाइल मशीनों का काफ़ी बड़ा हिस्सा बनाता है। वह सभी कपासउत्पादक जनतंत्रों को कपास की खेती और कपास की सफ़ाई में काम आनेवाली मशीनें सप्लाई करता है। यहां जितनी कृषि मशीनें तैयार की जाती हैं, उतनी पश्चिम एशिया के सभी देश मिलकर भी तैयार नहीं करते। उज़्बेकिस्तान के औद्योगिक माल ७० से अधिक देशों को निर्यात किये जाते हैं।

कृषि के क्षेत्र में भी महती सफलताएं हासिल की गयी हैं। मध्य एशिया के अन्य भागों की तरह यहां भी कृषि की उन्नति में भूमिसंबंधी लेनिनीय आज्ञप्ति (१६१७) और उसके आधार पर १६२०–१६२१ तथा १६२५–१६२६ में किये गये भूमि तथा जल सुधारों ने बहुत बड़ी भूमिका निभायी है।

भूमिसंबंधी आज्ञप्ति के अनुसार ज़ार ख़ानदान, बड़े अधिकारियों और स्थानीय बड़े सामंतों की जागीरों का राष्ट्रीकरण कर दिया गया था। यह पुराने भूमि संबंधों के टूटने की शुरूआत थी। मगर अधिकांश अच्छी ज़मीनें और पानी के स्रोतों पर अभी भी बाइयों (धनी किसानों) और उलेमाओं का अधिकार था। इसके अलावा मध्य एशिया में सोवियत सत्ता के आरंभिक वर्षों में भूमि इस्तेमाल के मामले में विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के बीच ज़ारशाही के ज़माने से चली आ रही असमानता का अन्त नहीं किया गया था। तुर्किस्तान क्षेत्र की लगभग आधी सिंचित भूमि और जल स्रोतों पर धनी रूसी किसानों का क़ब्ज़ा था।

गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत राज्य ने उज़्बेकिस्तान और अन्य मध्य एशियाई जनतंत्रों में कृषिभूमि सुधारों को पूरी तरह लागू करना शुरू किया। इस शर्त पर कि वह अपनी ही मेहनत से खेती करेगा, भूमि इस्तेमाल का अधिकार हर किसान को दिया गया, चाहे वह किसी भी राष्ट्र या जाति का क्यों न हो। इसके साथ ही सिंचाई के काम आनेवाले पानी का सवाल भी मेहनतकशों के पक्ष में हल किया गया। पानी को राज्य की संपत्ति बना दिया गया।

भूमि तथा जल सुधार उपनिवेशवादी शासन के अवशेषों, सामंती-पितृसत्तात्मक भूमि संबंधों और भूमिपतियों द्वारा मेहनतकश जनता के शोषण के विरुद्ध लक्षित थे। अपने सार की दृष्टि से ये क्रान्तिकारी क़दम थे, जिनके फलस्वरूप कृषि में आमूल परिवर्तन आये।

भूमि तथा जल सुधारों को कार्यरूप देने में ग़रीब किसानों तथा खेतमज़दूरों के "कोश्ची" नामक संगठनों ने बड़ी भूमिका निभायी। ये संगठन मध्य एशिया में सोवियत सत्ता के महत्त्वपूर्ण अवलंब थे।

भूमि तथा जल सुधारों के क्रियान्वयन के साथ मध्य एशियाई जनतंत्रों में क्रांतिकारी-जनवादी कृषिभूमि परिवर्तनों का दौर भी समाप्त हुआ।

इतिहास में पहली बार उज़्बेक किसान आज़ाद हुए और अपनी ही ज़मीन पर खेती करने लगे। देश के अन्य किसानों की तरह उज़्बेक किसानों ने भी सामूहिक खेती का रास्ता अपनाया। छोटे पैमाने की तथा पिछड़ी हुई कृषि शीघ्र ही बड़े पैमाने की समाजवादी और नवीनतम यंत्रसामग्री से लैस कृषि में परिवर्तित हो गयी। जिस उज़्बेकिस्तान में पहले साढ़े सात लाख के क़रीब छोटी-छोटी किसान काश्तें थीं, वहां अब उन काश्तों की जगह पर १०१४ सामूहिक फ़ार्म और ३०० से अधिक राजकीय फ़ार्म संगठित किये गये, जो अनाज, साग-सब्जियां, फल, कपास, आदि का उत्पादन और पशुपालन करते थे।

इन सब बातों के फलस्वरूप कृषि उत्पादन एकाएक काफ़ी बढ़ाने, बड़े पैमाने पर रसायनों तथा खादों का इस्तेमाल करने, कृषि का सर्वांगीण यंत्रीकरण करने, सिंचित कृषि बढ़ाने और वस्तुतः विराट पैमाने पर सिंचाई नहरें, आदि बनाने की संभावना मिली। १९३९ तक दर्जनों नहरें बनायी गयीं, जिनकी कुल लंबाई ८०० किलोमीटर से अधिक थी। इस बृहद् कार्य का पराकाष्ठा-बिंदु बड़ी फ़रग़ाना नहर का निर्माण था। १९३९ में १ लाख

६० हज़ार लोगों ने ४५ दिन में ही इस २७० किलोमीटर लंबी, ३० मीटर चौड़ी और ४ मीटर गहरी नहर को तैयार कर दिया। सोवियत संघ की सरकार ने निर्माण कार्य के लिए २ करोड़ रूबल, २०० ट्रक, ६० ट्रैक्टर और १५ हज़ार घनमीटर लकड़ी दी थी। उस साल को देखते हुए ये साधन कम न थे। इस तरह उस सिंचाई निर्माण कार्य की नींव रखी गयी, जिसका सहारा लेकर जनतंत्र अपने वर्तमान स्तर पर पहुंच सका है।

आज उज़्बेकिस्तान में भूखी स्तेपी जैसे इलाक़े, जो पहले निर्जल, उजाड़ और रेगिस्तानी थे, फूलते-फलते कृषि क्षेत्रों में बदल रहे हैं। यहां दर्जनों कपासउत्पादक राजकीय फ़ार्म बनाये गये हैं, नये नगर और बस्तियां बसायी गयी हैं और सांस्कृतिक तथा सामुदायिक केन्द्रों, नहरों आदि का निर्माण किया गया है।

सिंचाई विशेषज्ञों के सामने एक समस्या खारी भूमि की भी थी। बात यह है कि यहां सिंचाई से भूगर्भीय जल का स्तर ऊंचा उठ जाता है और उसके साथ-साथ भूमिगत लवण भी ऊपर सतह पर उठ आता है। फलस्वरूप खेत बेकार हो जाते हैं। इस विपत्ति से बचने के लिए सतह की धुलाई का जो तरीक़ा पहले इस्तेमाल किया जाता था, उसके वांछित परिणाम नहीं निकलते थे। अतः एक नया तरीक़ा इस्तेमाल किया जाने लगा। यह था नालियां खोदकर भूमिगत खारे पानी को खेतों से दूर ले जाना। इस तरह जनतंत्र में सिंचाई कार्यों के विस्तार के साथ-साथ भूउद्धरण कार्य पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता है और कपास की अच्छी पैदावार के लिए प्रकृति से संघर्ष किया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में हुए समाजवादी परिवर्तनों की बदौलत अब कपास की पैदावार काफ़ी बढ़ गयी है और उसके एक निश्चित स्तर से कम न होने की गारंटी की जा सकती है। पहले इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। १९१७ की क्रांति से पहले उज़्बेकिस्तान में ५ लाख ५४ हज़ार हैक्टर से अधिक क्षेत्रफल पर कपास बोयी जाती थी और प्रति हैक्टर औसत पैदावार ११ क्विंटल थी। गृहयुद्ध के अन्त तक कपास का बोवाई क्षेत्रफल क्रांति से पहले के दसवें हिस्से जितना और प्रति हैक्टर औसत पैदावार ७ क्विंटल रह गयी (कुल बोवाई क्षेत्रफल में आधे के क़रीब

कमी आयी)। उन दिनों कपास बटोरने की मशीनें और ट्रैक्टर तो थे नहीं और सिंचाई नहरों के लिए खुदाई, आदि भी अधिकांशतः हाथों से ही करना होता था। कपास उत्पादन का क्रांति से पहले का स्तर १६२८ में जाकर ही पुनः हासिल किया जा सका। १६७१-१६७५ में उज़्बेक किसानों ने २,४५,००,००० टन कपास पैदा की।* दसवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक वार्षिक उत्पादन ५८,००,००० टन तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है।

उज़्बेकिस्तान में कपास उत्पादन से संबंधित सभी काम लगभग पूरी तरह यंत्रीकृत होते जा रहे हैं। जनतंत्र में हज़ारों कपास बटोरने की मशीनें हैं। फ़सल का काफ़ी हिस्सा मशीनों से ही बटोरा जाता है। जनतंत्र में एक प्रदेश ऐसा भी है, जहां सारी कपास मशीनों से बटोरी जाती है। यह भूतपूर्व 'भूखी' स्तेपी में स्थित सीर दरिया प्रदेश है।

ज्ञात है कि विदेशों में भी कपास का बोवाई क्षेत्रफल बढ़ रहा है। मगर वहां उत्पादन में उत्तरोत्तर कमी आ रही है। इसका कारण भूमि का पूंजीवादी ढंग से शोषण या फिर जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में होता है, कपास बटोरनेवालों का निर्मम शोषण ही नहीं है। इसका कारण कपास की फ़सल को होनेवाला विल्ट रोग, जिसे कपास का कैंसर कहते हैं, और भूमि का क्षारीकरण भी है।

उज़्बेक वैज्ञानिकों ने कपास की एक नयी क़िस्म का विकास किया है। "ताशक़न्द-३" नामक यह विश्व में एकमात्र क़िस्म है, जिसे विल्ट रोग नहीं लगता।

कपास के कुल उत्पादन की दृष्टि से उज़्बेकिस्तान को दुनिया में दूसरा स्थान प्राप्त है। वह अकेला ही उससे अधिक कपास पैदा करता है, जितना मिस्र, पाकिस्तान और तुर्की जैसे मुख्य कपास उत्पादक देश मिलकर पैदा करते हैं। प्रति हैक्टर पैदावार की दृष्टि से उज़्बेकिस्तान विश्व में पहले नंबर पर है। जनतंत्र में प्रति हैक्टर औसत पैदावार ३० क्विंटल है। ख़्वारज़्म प्रदेश में तो प्रति हैक्टर औसत पैदावार ४० क्विंटल तक पहुंच गयी है (कुल बोवाई क्षेत्रफल १ लाख हैक्टर)।

---

*एक टन कपास से ३४०० मीटर कपड़ा, ६४ किलोग्राम तेल और कोई ६० प्रकार के अन्य माल तैयार किये जा सकते हैं।

मौलिक परिवर्तन अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में ही नहीं आये हैं। सोवियत संघ के हर राष्ट्र और जाति की संस्कृति ने भी बड़ा विकास किया है। कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसे अनेक क़दम उठाये, जिनका उद्देश्य सभी भूतपूर्व उत्पीड़ित जनों की संस्कृति को नये, समाजवादी आधार पर पुनर्जन्म देना था।

देश में सबसे पहले उन जनों के सांस्कृतिक स्तर को तेज़ी से उठाने पर ज़ोर दिया जा रहा है, जो कुछ बातों में अभी औसत संघीय स्तर तक नहीं पहुंच पाये हैं। इसलिए अगर कुल मिलाकर सोवियत संघ में सामाजिक तथा सांस्कृतिक लक्ष्यों (शिक्षा, संस्कृति, विश्राम, खेलकूद, इत्यादि) पर कुल राष्ट्रीय बजट का ३७–३८ प्रतिशत व्यय किया जाता है, तो मध्य एशियाई जनतंत्रों में यह व्यय कहीं अधिक है। मिसाल के लिए, १९७१ में इन लक्ष्यों पर ताजिकिस्तान ने अपने बजट का ५४ प्रतिशत से अधिक, तुर्कमानिस्तान ने लगभग ६० प्रतिशत और क़िर्गिज़स्तान ने ६५ प्रतिशत से अधिक हिस्सा व्यय किया। यदि १९६२-६३ से लेकर १९६९-७० तक के शिक्षा वर्षों में सारे सोवियत संघ में उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की कुल संख्या ५५ प्रतिशत बढ़ी, तो क़ज़ाख़, मोल्दाव तथा तुर्कमान विद्यार्थियों के मामले में यह वृद्धि लगभग दोगुना और उज़्बेक, आज़रबैजानी, क़िर्गिज़ तथा ताजिक विद्यार्थियों के मामले में दोगुने से अधिक थी। उल्लेखनीय है कि आज भी १५ संघीय जनतंत्रों में से ९ में और २० स्वायत्त जनतंत्रों में से १७ में विशेषज्ञों के प्रशिक्षण की रफ़्तार राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा अधिक है।

यह सूचक भी काफ़ी लाक्षणिक है: प्रति १० हज़ार व्यक्तियों पीछे उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की संख्या उज़्बेकिस्तान में फ़्रांस से दोगुना, इंग्लैण्ड से लगभग तीनगुना, पश्चिमी जर्मनी से सवा तीनगुना और इटली से तीनगुना अधिक है।

सोवियत पूर्व के पांच जनतंत्रों – उज़्बेकिस्तान, क़ज़ाख़स्तान, क़िर्गिज़स्तान, तुर्कमानिस्तान और ताजिकिस्तान – में १०० से अधिक उच्च शिक्षा संस्थाएं हैं, जिनमें कोई ५ लाख विद्यार्थी पढ़ते हैं। यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि आबादी के अनुपात में इन जनतंत्रों में स्थानीय राष्ट्रों और जातियों के उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की संख्या सारे देश में सबसे अधिक है।

उज़्बेकिस्तान सोवियत पूर्व का एक सबसे बड़ा वैज्ञानिक केन्द्र बन गया है। उसकी अपनी विज्ञान अकादमी और १८३ वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थाएं हैं, जिनमें १८ हज़ार के क़रीब वैज्ञानिक कर्मचारी काम कर रहे हैं। इन वैज्ञानिकों में से लगभग ५ हज़ार डाक्टर और कैण्डीडेट की पदवी से विभूषित हैं।

इस पृष्ठभूमि में कतिपय देशों की स्थिति बहुत ही दयनीय लगती है। मिसाल के तौर पर संयुक्त राज्य अमरीका को ही लें। विकसित पूंजीवादी देशों में उसे अशिक्षित नागरिकों की संख्या की दृष्टि से पहला स्थान प्राप्त है! जैसा कि १९७१ में हैरिस इंस्टीट्यूट द्वारा की गयी जांच से पता चला, इस देश के १३ प्रतिशत वयस्क नागरिक इतने अशिक्षित हैं कि यह "अमरीका के दैनंदिन जीवन में उनके सक्रिय भाग लेने में गंभीर बाधा डालता है।" पूछे गये लोगों में से वास्तव में कोई १४ प्रतिशत उन्हें दी गयी बहुत ही सरल प्रश्नावली के उत्तर नहीं लिख पाये थे।

६ से १३ वर्ष तक की आयु के लाखों अमरीकी बच्चे, विशेषत: रेड इंडियनों के लिए निर्धारित इलाक़ों में, शिक्षा पाने के अवसरों से पूरी तरह वंचित हैं। ग़रीबों के ६० लाख बच्चे ऐसे देहाती स्कूलों में पढ़ते हैं, जिनमें किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं है और सभी कक्षाओं को पढ़ाने के लिए एक ही अध्यापक होता है। २५ वर्ष से अधिक आयु के लगभग ७ लाख लोगों ने कभी स्कूल की देहरी पर क़दम नहीं रखा है।

अफ़्रीका में "व्यावहारिक दृष्टि से निरक्षर" लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस संबंध में 'नोयेस दोइचलन्द' समाचारपत्र लिखता है कि इन लोगों की भाषा इतनी में दरिद्र है कि वे आधुनिक समाज की परिस्थितियों में मुश्किल से ही कुछ कमा सकते हैं। बढ़ती हुई बेरोज़गारी इन लोगों को दो जून रोटी देने लायक रोज़गार पाने के अवसरों से पूरी तरह वंचित कर रही है।

क्रांति से पहले उज़्बेक भाषा में गद्यसाहित्य लगभग नहीं के बराबर था और जो थोड़ी-बहुत गद्य रचनाएं थीं भी, वे या तो लोककथाओं पर आधारित थीं या अरबी तथा अन्य भाषाओं से अनुवाद की हुई। किन्तु चौथे दशक के मध्य तक उज़्बेक भाषा में समृद्ध, सर्वांगीणत: विकसित ललित साहित्य अस्तित्व में आ गया, जिसमें गद्य भी था और पद्य भी।

अक्तूबर क्रान्ति से पहले तक उज़्बेक लोग सिंफ़नी संगीत से अपरिचित थे। केवल चौथे दशक के बाद ही उज़्बेक राष्ट्रीय आपेरा, बैले और बड़ी सिंफ़नी रचनाएं अस्तित्व में आयीं। मध्य एशिया के अन्य इलाक़ों की तरह यहां भी लोग नहीं जानते थे कि ईज़ल पेंटिंग क्या चीज़ होती है। जैसा कि सभी जानते हैं, इस्लाम जीव प्राणी, विशेषत: मनुष्य के चित्र बनाने पर प्रतिबंध लगाता है। मगर समाजवाद ने उज़्बेकिस्तान में ललित कला की सभी विधाओं तथा प्रवृत्तियों के विकास के लिए भी आवश्यक परिस्थितियां तैयार कीं।

उज़्बेकिस्तान में सांस्कृतिक तथा मनोरंजन संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। जनतंत्र के सिनेमाघरों में प्रति १० हज़ार व्यक्तियों पीछे तुर्की से दोगुना, पाकिस्तान से पन्द्रह गुना और ईरान से चार गुना अधिक सीटें हैं।

ये तथ्य भी बहुत कुछ बताते हैं: १९१३ में सारे रूस के पुस्तकालयों में कुल मिलाकर ९४ लाख पुस्तकें और पत्रिकाएं थीं, मगर १९६४ में अकेले उज़्बेक जनतंत्र ही पुस्तकालयों में १ करोड़ ९७ लाख पुस्तकें और पत्रिकाएं हो गयीं। इसके बाद के वर्षों के आंकड़े भी उज़्बेकिस्तान तथा अन्य जनतंत्रों में साहित्य प्रकाशन के सतत विस्तार की पुष्टि करते हैं। १९७४ में उज़्बेकी में १९२४ की अपेक्षा २६४ गुना अधिक पुस्तक-पुस्तिकाएं प्रकाशित हुईं। कज़ाख़ी और उक्रइनी के मामले में यह वृद्धि क्रमश: ८९ और १५३ गुना थी।

आर्थिक तथा सांस्कृतिक सफलताओं की दृष्टि से उज़्बेकिस्तान अपवाद नहीं है। इस तथ्य को समझाने के लिए, आइये, उज़्बेकिस्तान के पड़ोसी क़िर्गिज़ जनतंत्र का ही उदाहरण लें, जो आकार में बहुत बड़ा नहीं है।

क़िर्गिज़ जनता अक्तूबर क्रांति से पहले पूरी तरह निरक्षर थी। उसकी अपनी लिपि तक नहीं थी। किन्तु सोवियत सत्ता के वर्षों में वहां कोई २० हज़ार पुस्तकें छप चुकी हैं, (छपी हुई प्रतियों की कुल संख्या १० करोड़ से अधिक), जिनमें से ११ हज़ार से अधिक पुस्तकें क़िर्गिज़ भाषा में हैं। जनतंत्र के १७१६ आम शिक्षा स्कूलों में से लगभग १००० में पढ़ाई क़िर्गिज़ भाषा में होती है। इस भाषा में ४० से अधिक इलाक़ाई, प्रादेशिक और अखिल जनतंत्रीय समाचारपत्र निकलते हैं, जिनकी औसत

दैनिक बिक्री ५ लाख प्रतियों से अधिक है, और ८ पत्रिकाएं छपती हैं, जिनकी औसत वार्षिक बिक्री ३० लाख प्रतियों से अधिक है।

समाजवादी सांस्कृतिक क्रांति सारे देश में हुई सांस्कृतिक क्रांति का अभिन्न अंग है। उसकी बदौलत सोवियत संघ में एक नयी, सबसे प्रगतिशील संस्कृति का निर्माण किया गया। इसका हृद्स्थल मार्क्सवाद-लेनिनवाद की वैज्ञानिक विचारधारा है, जो मज़दूर वर्ग तथा सभी मेहनतकशों के मूलभूत हितों को व्यक्त करती है और किसी भी तरह की वैचारिक प्रतिगामिता को नहीं सहती। इतिहास में पहली बार वस्तुतः लोक संस्कृति की विजय हुई, जिसकी विशेषताएं हैं गहन प्रतिबद्धता, क्रांतिकारी मानवतावाद और देशप्रेम तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के आदर्शों का सम्यक् समन्वय। सोवियत सांस्कृतिक क्रांति समाजवादी सभ्यता के जन्म तथा विकास की सामान्य प्रक्रिया का एक स्वाभाविक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

सोवियत समाज की संस्कृति के विकास का वर्तमान चरण सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर पैठती हुई वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति से जुड़ा हुआ है, जो कम्युनिज़म की ओर प्रगति को तेज़ बना देती है। इस चरण की विशेषता है वैज्ञानिक विश्व-दृष्टिकोण की सर्वत्र मान्यता और मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारों का समाज के हर सदस्य के गहन अन्तर्विश्वासों में परिवर्तित होना।

सोवियत संघ के "सांस्कृतिक विभव" से संबंधित तथ्य बताते हैं कि मानव संस्कृति में इस देश का क्या स्थान है।

आबादी के अनुपात में इंजीनियरों और डाक्टरों तथा सिनेमा दर्शकों की संख्या और इसी तरह सांस्कृतिक विकास के कई अन्य सूचकों की दृष्टि से भी सोवियत संघ का विश्व में पहला स्थान है। आज विश्व में हर चौथा वैज्ञानिक सोवियत संघ में काम करता है। सोवियत जनता को विश्व की सबसे अधिक पढ़नेवाली जनता ठीक ही कहा जाता है। ये सफलताएं इसका ज्वलंत प्रमाण हैं कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने मेहनतकश जन को चिन्तित करनेवाली ऐसी समस्याओं को सृजनात्मक ढंग से हल कर लिया है, जैसे राष्ट्रों की राजनीतिक असमानता का उन्मूलन, शोषणाधारित व्यवस्था से विरासत में मिले बहुत से जनों के आर्थिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन का ख़ात्मा, उनके विकास स्तरों को समान बनाना, विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच शोषक वर्गों द्वारा पैदा किये हुए अविश्वास का ख़ात्मा

श्रौर सबको स्वैच्छिकता के श्राधार पर एक बंधुत्वपूर्ण परिवार में संघटित करना।

जन मैत्री सोवियत संघ के प्रत्येक राष्ट्र श्रौर जाति की विजयों का एक महत्त्वपूर्णतम स्रोत है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध ने सोवियत जनों के जुझारू बंधुत्व के इतिहास में श्रनेक मर्मस्पर्शी पृष्ठ जोड़े थे। १९४१ के श्रंत में जिस डिविज़न ने हिटलरी टैंकों को मास्को की श्रोर बढ़ने से रोका था, वह दूरवर्ती क़ज़ाख़स्तान में गठित की गयी थी। उसके श्रठाइस सैनिकों ने क़सम खायी थी कि एक क़दम पीछे नहीं हटेंगे श्रौर वे सफल रहे...

सोवियत संघ के पश्चिमी जनतंत्र – बेलोरूस, लाटविया श्रौर लिथुश्रानिया – युद्ध के श्रग्निमय तूफ़ान की चपेट में श्रा गये थे। यहां जन छापामार युद्ध की मशाल जली। छापामार श्रड्डों में, श्रस्थायी छावनियों में तरह-तरह की बोलियां-भाषाएं सुनायी देती थीं। श्राज रूस, बेलोरूस श्रौर लाटविया की सीमाश्रों पर शहीदों की स्मृति में एक टीला खड़ा किया गया है, जहां हर साल गरमियों के श्रन्त में भूतपूर्व सैनिक उन्हें श्रद्धांजलि श्रर्पित करने श्राते हैं।

सोवियत संघ के सभी जनों की मैत्री, जो ज़ारशाही के विरुद्ध संघर्ष द्वारा पवित्र बनी, गृहयुद्ध श्रौर महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध की श्राग में तपकर मज़बूत बनी श्रौर शांतिमय निर्माण में श्रागे पोषित हुई, समाजवाद श्रौर लेनिनीय राष्ट्रीय नीति की एक सर्वोच्च उपलब्धि श्रौर विजय है। लेश्रोनीद ब्रेज़्नेव ने कहा था, "जन मैत्री हमारे समाज की रग-रग में बस गयी है। रूसी, उक्रइनी, बेलोरूसी, उज़्बेक, क़ज़ाख़, जार्जियाई, श्राज़रबैजानी, लिथुश्रानियाई, मोल्दावियाई, लाटवियाई, क़िर्गिज़, ताजिक, श्रारमीनियाई, तुर्कमान, एस्तोनी, श्रादि हमारे देश के सभी जन एक दूसरे को श्रपना साथी श्रौर सहयोगी मानते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं, साथ-साथ मेहनत करते हैं श्रौर कम्युनिज़्म निर्माण के संघर्ष में हिस्सा लेते हैं। यह है लेनिनीय राष्ट्रीय नीति का भव्य परिणाम।"*

इस प्रसंग में हमें २६ श्रप्रैल, १९६६ का दिन बरबस याद हो

---

* लेश्रोनीद ब्रेज़्नेव : 'लेनिन के पदचिह्नों पर। भाषण श्रौर लेख' (१९७०)।

जाता है। उस दिन सोवियत उज़्बेकिस्तान की राजधानी ताशक़न्द में भयंकर भूचाल आया था। बहुत बड़ी संख्या में रहने के घर, अस्पताल, स्कूल, राजकीय और सार्वजनिक इमारतें नष्ट हो गयीं और लाखों लोग बेघर हो गये। दो फ़ैक्टरियों को भी गंभीर नुक़सान पहुंचा।

ताशक़न्द की सहायता के लिए सारा देश, सभी राष्ट्रीय इलाक़े उमड़ पड़े। अपने साधनों और अपनी सामग्रियों से संघीय और स्वायत्त जनतंत्रों, जातीय प्रदेशों और क्षेत्रों ने ताशक़न्द में नागरिक और औद्योगिक इमारतें और पूरे के पूरे आवास मुहल्ले बनवाये। देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी अपनी गरमियों की छुट्टियों में यहां आये, ताकि उज़्बेकिस्तान की राजधानी के पुनर्निर्माण में हाथ बंटा सकें।

'वेचेर्नी ताशकेन्त' समाचारपत्र ने लिखा था, "ताशक़न्द के पुनर्निर्माण में हर जनतंत्र, मास्को, लेनिनग्राद और सैनिक निर्माताओं ने जो योग दिया है, उसके आंकड़े मैत्री के गीत की तरह गूंजते हैं। नगर में मास्को ने २ लाख ३० हज़ार, लेनिनग्राद ने १ लाख, रूसी संघ ने ३ लाख ३४ हज़ार ८ सौ, उक्रइना ने १ लाख ६३ हज़ार ७ सौ, बेलोरूस ने २६ हज़ार ६ सौ, क़ज़ाख़स्तान ने २८ हज़ार ३ सौ, जार्जिया ने २२ हज़ार ८ सौ, आज़रबैजान ने ३५ हज़ार, लिथुआनिया ने १० हज़ार ७ सौ, मोल्दाविया ने ६ हज़ार ७ सौ, लाटविया ने ८ हज़ार ९ सौ, क़िर्गिज़स्तान ने ११ हज़ार ३ सौ, ताजिकिस्तान ने ८ हज़ार, आरमीनिया ने १५ हज़ार ३ सौ, तुर्कमानिस्तान ने ९ हज़ार, एस्तोनिया ने ५ हज़ार ६ सौ और सैनिक निर्माताओं ने १ लाख ७० हज़ार वर्गमीटर आवास क्षेत्र का निर्माण किया है।" स्वयं ताशक़न्द और उज़्बेकिस्तान के अन्य प्रदेशों के निर्माताओं ने २० लाख वर्गमीटर से अधिक आवास क्षेत्र का निर्माण किया।

सारे देश में ताशक़न्द सहायता कोष के लिए साधन एकत्र करने का आन्दोलन छिड़ गया था। उसमें ८७ लाख ५० हज़ार रूबल से अधिक जमा किया गया। देश के विभिन्न नगरों के हज़ारों सोवियत लोगों ने ताशक़न्द सहायता कोष में खुलकर चंदा दिया।

उज़्बेक जनतंत्र की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल को सेवास्तोपोल नगर से फ़ेओदोसिया मक्सीमोवा और उनकी बेटी नीना का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे अपनी बचत से एक पूर्वनिर्मित ब्लाकोंवाला

मकान ख़रीदकर भेंटस्वरूप ताशक़न्द नगर को देना चाहती हैं। प्रस्ताव साभार स्वीकार कर लिया गया और अब उस घर में अज़ीमखोजा इस्लामखोजायेव का परिवार रहता है। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के दिनों में मक्सीमोव परिवार के सदस्यों को शत्रु अधिकृत इलाक़े से हटाकर ताशक़न्द में रहने के लिए भेजा गया था और ऐसे अनगिनत अन्य परिवारों की तरह उनका भी यहां गले लगाकर स्वागत किया गया। इसलिए जब ताशक़न्द प्राकृतिक विपदा का शिकार बना, तो देश के विभिन्न भागों में रहनेवाले बहुत से दूसरे लोगों की तरह मक्सीमोव परिवार भी उसके निवासियों की सहायता के लिए आगे आया। यही जन मैत्री और परस्पर सहायता का साकार रूप है। ऐसी मैत्री समाजवाद की परिस्थितियों में ही संभव हो सकती है।

समाजवादी राष्ट्रमण्डल के देशों ने भी ताशक़न्द की ओर सहायता का हाथ बढ़ाया। बुडापेस्ट विश्वविद्यालय के कर्मीसमुदाय से मिला पत्र बहुत ही मर्मस्पर्शी है। उसमें कहा गया था :

"आपके प्राचीन नगर में पुनः भूचाल आने, इमारतों के नष्ट होने और बहुत-से लोगों की जान ख़तरे में पड़ जाने की ख़बर सुनकर हमें बहुत धक्का लगा। ताशक़न्द के निवासियों के साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। इन मुसीबत के दिनों में हम दिल से आपके साथ हैं। हमें विश्वास है कि यह प्राकृतिक विपदा ताशक़न्द के जीवन और आपके श्रम में बाधा नहीं डाल सकती और गीतों को गूंजने से नहीं रोक सकती। अपने सभी देशवासियों की तरह हमें भी सच्ची ख़ुशी है कि ताशक़न्द के लोग इस विपत्ति से विचलित नहीं हुए और कारख़ानों में तथा अपने सुंदर नगर के पुनर्निर्माण के लिए डटकर काम करते जा रहे हैं...

"हम आपके विश्वविद्यालय के २० अध्यापकों और छात्रों को अपने यहां आराम करने के लिए आमंत्रित करना चाहते हैं। बुडापेस्ट के ल० एतवेश राजकीय विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा छात्रों की ओर से हम आपसे कुछ हफ़्ते के लिए हंगरी आने का अनुरोध करते हैं, जिनके दौरान आपको सभी सुविधाएं उपलब्ध करवायी जायेंगी और आपका पूरा-पूरा ख़्याल रखा जायेगा। हमारे यहां की धरती शांत है और गरमियों का मौसम शानदार होता है। हमारे प्रोफ़ेसर, अध्यापक और छात्र और हमारी सारी जनता आपकी प्रतीक्षा कर रही है।"

उन अविस्मरणीय दिनों में बुलगारियाई कम्युनिस्ट पार्टी की ख़ास्कोव प्रदेश की समिति और प्रादेशिक सोवियत ने ताशक़न्द में अपनी शक्ति और साधनों से एक माध्यमिक स्कूल की इमारत बनाने का फ़ैसला किया। जनवरी, १९६९ में बुलगारियाई कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के प्रथम सचिव और बुलगारिया की राज्य परिषद के अध्यक्ष तोदोर जीव्कोव ने इस इमारत का शिलान्यास किया। स्कूल बनकर तैयार हो चुका है। वह विश्व समाजवादी प्रणाली के राष्ट्रों की मैत्री का प्रतीक है।

खंडहरों में से अब एक ऐसे नये ताशक़न्द ने जन्म लिया है, जो सोवियत जनों की मैत्री और भ्रातृत्व का मूर्तरूप है।

नये प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का जन्म और विकास इतिहास में पहली बार सोवियत संघ में ही हुआ है। ये संबंध जनों की पूर्ण समानता और मैत्री, उनके सर्वतोमुखी सहयोग और राष्ट्रों तथा जातियों की राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परस्पर सहायता पर आधारित हैं।

सोवियत संघ में राष्ट्रों और जातियों के विकास के वर्तमान चरण की विशेषता उनका उत्थान ही नहीं, अपितु परस्पर सन्निकटन भी है।

राष्ट्रों के सन्निकटन के बारे में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्या धारणा है?

व्ला० इ० लेनिन ने अनेक बार ज़ोर देते हुए कहा था कि "सर्वहारा पार्टी चाहती है कि राष्ट्र **एक दूसरे के निकट आयें और आपस में और अधिक घुले-मिलें।**"* इस संबंध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

राष्ट्रों का उत्थान और सन्निकटन ये दो सहगामी, परस्पर पूरक प्रवृत्तियां हैं। असल में वे एक ही प्रक्रिया – समाजवादी समाज के आर्थिक, राजनीतिक तथा आत्मिक आधारों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया – के दो पहलू हैं।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने राष्ट्रों के सन्निकटन और विशेषत: विलयन की समस्या के समाधान में हड़बड़ी दिखाने के विरुद्ध चेतावनी दी थी और आज भी देता है। वह बताता है कि राष्ट्रों के सन्निकटन और राष्ट्रों के

---

*व्ला० इ० लेनिन : 'हमारी क्रांति में सर्वहारा वर्ग के कार्यभार' (१९१७)।

विलयन, इन दो अवधारणाओं के बीच अन्तर किया जाना चाहिए। वह कहता है कि राष्ट्रीय अन्तरों के विलोपन के लिए काफ़ी लंबे समय तक उसका आधार तैयार किया जाना आवश्यक है।

सोवियत संघ में राष्ट्रों के सन्निकटन की प्रक्रिया महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद उसकी समाज के समाजवादी रूपान्तरण और विशेषत: राष्ट्रीय नीति से संबंधित आज्ञप्तियों के प्रभावस्वरूप शुरू हुई थी। अब कम्युनिज़्म के भौतिक-तकनीकी आधार के सफल निर्माण के लिए आवश्यक है कि सोवियत जन एक दूसरे के और भी क़रीब आयें।

प्रतिक्रियावादी पश्चिमी जर्मन विचारक बी० मैस्नर जैसे बूर्ज़ुआ समाजशास्त्रियों के सभी दावों के विपरीत सोवियत संघ में राष्ट्रों के सन्निकटन का मतलब यह कतई नहीं है कि देश का कोई एक राष्ट्र, मिसाल के लिए, रूसी जन, शेष सभी राष्ट्रों और जातियों को "निगल" जायेगा। मैस्नर लिखते हैं कि मानो सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीतिक का लक्ष्य "सभी राष्ट्रों और जातियों को सोवियत-रूसी प्रकार के एक राष्ट्र में मिला देना" है।*

राष्ट्रों के सन्निकटन का अर्थ निगलना नहीं, बल्कि हर राष्ट्र और जाति की परंपराओं, इतिहास, चरित्र, संस्कृति और रहन-सहन में जो कुछ भी प्रगतिशील तथा उत्कृष्ट तत्त्व हैं, उनसे सबको समृद्ध बनाना है।

अब कम्युनिज़्म निर्माण के वर्तमान चरण में राष्ट्रों के सन्निकटन की प्रगति पर दृष्टिपात करें। सबसे पहले आर्थिक क्षेत्र को लें।

कम्युनिस्ट पार्टी अपनी नीति के पहले चरणों की भांति अब भी संघीय जनतंत्रों के आर्थिक विकास के स्तरों, दूसरे शब्दों में, राष्ट्रों के आर्थिक स्तरों को एक दूसरे के अधिकाधिक निकट लाने के लिए लगातार और दृढ़तापूर्वक प्रयत्न कर रही है। यह लक्ष्य न केवल उत्पादन की मात्रा बढ़ाकर, बल्कि मुख्यत: अर्थव्यवस्था के ढांचे में परिवर्तन और उद्योगों, मज़दूर वर्ग, शहरी आबादी और प्रशिक्षित कर्मियों के अनुपात में वृद्धि करके हासिल किया गया था और किया जा रहा है। इस तरह ऊर्जा

---

* B. Meissner, *Das Parteiprogramm des KPdSU*, 1903 bis 1961, Köln, 1962, S. 3.

की बहुत अधिक खपतवाले नये उद्योग मुख्यत: साइबेरिया, क़ज़ाख़स्तान और मध्य एशिया में स्थापित किये गये हैं, क्योंकि उनमें ऊर्जा के अधिक सस्ते स्रोत उपलब्ध हैं।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, हर जनतंत्र सभी राष्ट्रों और जातियों के संयुक्त सृजनात्मक श्रम के आधार पर ही आगे उन्नति करता है। यह संयुक्त श्रम ही नये, उज्ज्वल जीवन का निर्माण करनेवाले राष्ट्रों तथा जातियों को एक दूसरे के निकट लाता है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की पच्चीसवीं कांग्रेस में पेश की गयी केन्द्रीय समिति की रिपोर्ट में बताया गया था कि दसवीं पंचवर्षीय योजना सोवियत संघ में शामिल सभी जनतंत्रों, राष्ट्रों और जातियों के विकास की योजना होगी। लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "हमारे देश में जिस एकीभूत आर्थिक प्रणाली का निर्माण हुआ है, वह जनगण की मैत्री और सहयोग के सुदृढ़ भौतिक आधार का काम करती है।"

सोवियत समाज के आत्मिक जीवन में भी राष्ट्र तेज़ी से एक दूसरे के निकट आते जा रहे हैं।

संस्कृतियों द्वारा एक दूसरे पर गहरा प्रभाव डालने की प्रवृत्ति पूंजीवाद की परिस्थितियों में ही शुरू हो जाती है, जब कुछ राष्ट्रों के आत्मिक जीवन की उपलब्धियां कुछ हद तक सभी राष्ट्रों की संपत्ति बनती हैं। मिसाल के लिए, राष्ट्रीय स्थानीय साहित्यों के समूह से ही विश्व साहित्य बनता है। विभिन्न जनों की संस्कृति द्वारा एक दूसरे पर गहरा प्रभाव डालने की इस विशेषता का उल्लेख कार्ल मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने "कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र" में भी किया था।

किन्तु साथ ही यह भी मालूम है कि राष्ट्रीय तथा नसली वैमनस्य पर आधारित पूंजीवाद में यह प्रवृत्ति पूर्णत: विकसित न हो सकी। इतना ही नहीं, पूंजीवाद के रहते हम "सांस्कृतिक विस्तारवाद" को भी काम करता पाते हैं–नये इलाक़े जीतने के लिए भेजे गये सिपाहियों के पीछे-पीछे उपनिवेशनकर्त्ता पूंजीपति और "संस्कृति-प्रसारक" का लबादा ओढ़े ऐसे लोग भी वहां पहुंचते हैं, जिन्हें वास्तव में प्रभुत्वसंपन्न वर्गों ने यह काम सौंपा होता है कि वे विजित जनों पर अपनी प्रतिक्रियावादी शोषक संस्कृति थोपें और स्थानीय संस्कृति में जो भी प्रगतिशील तत्त्व हैं, उन्हें कुचल दें। इस संबंध में अपने उपनिवेशों में रूसी ज़ारशाही द्वारा अपनायी

गयी रूसीकरण की नीति, भारत में अंग्रेज़ और अफ़्रीका में फ़्रांसीसी उपनिवेशवादियों की "सांस्कृतिक कारस्तानियों" और संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा लैटिन अमरीकी संस्कृतियों के दमन की ही याद दिलाना काफ़ी होगा।

समाजवाद में सभी सोवियत राष्ट्रों और जातियों की साझी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का तेज़ी से विकास होता है। यह विकास राष्ट्रीय संस्कृतियों द्वारा एक दूसरे को प्रभावित, उनके राष्ट्रीय रूपों को बेहतर बनाते हुए उनके समाजवादी सार को संवर्धित और हर राष्ट्रीय संस्कृति द्वारा दूसरी राष्ट्रीय संस्कृतियों से उनके श्रेष्ठतम तत्त्व आत्मसात् किये जाने के ज़रिये होता है। सोवियत जनों की राष्ट्रीय संस्कृतियां अपनी विशिष्टता, अपना राष्ट्रीय विलक्षणता खोये बिना एक साझी समाजवादी संस्कृति का अंग बन जाती हैं।

दाग़िस्तान के जन कवि रसूल हमज़ातोव ने, जिनकी ख्याति सोवियत संघ की सीमाओं से भी बाहर दूर-दूर तक फैल चुकी है, इस संबंध में बहुत सुंदर कहा है:

"कम्युनिस्ट विश्व-दृष्टिकोण किसी भी जन से अपनी जीवन पद्धति, अपनी प्रथाओं तथा अच्छी परंपराओं, अपनी भाषा और संस्कृति का त्याग करने की मांग नहीं करता। उल्टे, हमारे देश में हर राष्ट्रीय संस्कृति का और विकास ही होता है, वह नया स्वर तथा सार ही ग्रहण करती है। समाजवाद में हर जनता को मानवजाति की प्रगति में अपना योग देने का अवसर मिला हुआ है। किसी जन के गीतों का स्वर अन्य जनों के गीतों के स्वरों को नहीं दबाता। हम नये गीत तो गाते हैं, पर जो गीत बचपन में पालने में सुने थे, उन्हें कभी भुलाते नहीं। भविष्य की ओर क़दम बढ़ाते बच्चे बड़े ध्यान से अपने बूढ़े दादाओं से क़िस्से-कहानियां सुनते हैं, लंबे सफ़र पर जानेवाले युवकों के घोड़ों की लगामें बूढ़े ही थामते हैं।"

सोवियत उज़्बेकिस्तान के ही सांस्कृतिक जीवन से कुछ मिसालें दें, जो ऊपर कही हुई बातों की पुष्टि करती हैं।

सोवियत सत्ताकाल में उज़्बेकिस्तान में क्लासिकल और आधुनिक सोवियत साहित्य की सैकड़ों कृतियों का अनुवाद हो चुका है। उज़्बेक भाषा में अनेक विदेशी साहित्यकारों की कृतियां भी उपलब्ध हैं।

उज़्बेक जनतंत्र में ऐसा एक भी थियेटर नहीं है, जो बंधु जनतंत्रों

के नाटककारों की कृतियां प्रस्तुत न करता हो। हर वर्ष उज़्बेक भाषा में अन्य भाषाओं के १५ से भी अधिक नाटक अनूदित होते हैं।

सोवियत राष्ट्रों और जातियों के अन्तर्राष्ट्रीयतावादी बंधुत्व के सुदृढ़ बनने, उनके एक दूसरे के निकट आने और एक दूसरे की सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित होने का एक कारगर तरीक़ा साहित्य तथा कला समारोहों का आयोजन है। ताशक़न्द में बंधु जनतंत्रों के साहित्य तथा कला समारोह होते हैं और उनमें उज़्बेक जनतंत्र के। इससे सोवियत जनों की संस्कृतियों के सन्निकटन और परस्पर संवर्धन में सहायता मिलती है।

अर्थव्यवस्था, विज्ञान, संस्कृति और शासन के हर क्षेत्र में बहुत से राष्ट्रों और जातियों के लोगों का साथ-साथ काम करना भी समाजवादी राष्ट्रों के सन्निकटन में सहायक बनता है। सोवियत संघ में ऐसा एक भी जनतंत्र नहीं है, जहां विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के लोग साथ-साथ काम न करते हों। यही बात जनतंत्रों के कम्युनिस्ट संगठनों पर भी लागू होती है। मिसाल के लिए, उज़्बेकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों में ८० से अधिक राष्ट्रों और जातियों के प्रतिनिधि हैं।

साथ-साथ काम, साथ-साथ शिक्षा, व्यापक संपर्क और मैत्री अन्तर्राष्ट्रीयतावादी चेतना और भावनाएं पैदा करते हैं और साझी जीवन पद्धति को मज़बूत बनाने में सहायक होते हैं। परस्पर संपर्कों के घनिष्ठ बनने की प्रक्रिया में नये आचार नियम पैदा होते और बढ़ते हैं, सोवियत मानव का एकीभूत आत्मिक चरित्र विकसित होता है और प्रगतिशील राष्ट्रीय विशेषताएं अन्तर्राष्ट्रीय विशेषताएं बन जाती हैं।

सोवियत संघ में एकाधिक राष्ट्रों के लोगों का साथ-साथ काम करना दिखाता है कि देश में विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के प्रतिनिधियों के बीच एक नये प्रकार के संबंधों ने जन्म लिया है। ये संबंध पूर्ण समानता, मैत्री और परस्पर सहायता पर आधारित हैं। आबादी का अन्तर्राष्ट्रीयकरण पूंजीवादी देशों में भी होता है। मगर वहां इसके बावजूद विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच असमानता और भेदभाव ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

बहुत से अनुसंधानकर्त्ताओं का सोचना है कि अन्तर्जातीय विवाह भी राष्ट्रों के एक दूसरे के निकट आने में सहायक होते हैं।

जैसा कि सभी जानते हैं, रोमन-कैथोलिक, इस्लाम, यहूदी और आर्थोडाक्स धर्म बहुत पहले से ही अन्तर्जातीय विवाहों का विरोध करते

रहे हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के बहुत से राज्यों के संविधान विभिन्न नसलों के लोगों के बीच विवाहों पर पाबंदी लगाते हैं। यह सब शोषणाधारित परिपाटियों के अस्तित्व और उन्हें प्रश्रय दिये जाने का परिणाम है। विभिन्न जनों का सन्निकटन, उनकी मैत्री और शोषक व्यवस्था के विरुद्ध उनका संयुक्त संघर्ष इन परिपाटियों के लिए ख़तरा हैं। सभी पाबंदियों के बावजूद मिश्रित विवाह अतिप्राचीन काल से होते आये हैं। मगर उनकी संख्या इक्की-दुक्की ही थी।

सोवियत संघ में अन्तर्जातीय विवाह विभिन्न जनों की मैत्री और राष्ट्रों के सन्निकटन का ज्वलंत परिचायक हैं। ऐसे विवाहों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। सोवियत संघ में राष्ट्रीय एवं जातीय अन्तर विभिन्न जनों के बेटे-बेटियों द्वारा परिवार बसाने में बाधक नहीं रह गये हैं।

इस संबंध में कुछ आंकड़े दें। सोवियत संघ में होनेवाले हर हज़ार विवाहों में से कम से कम १०० अन्तर्जातीय विवाह होते हैं और मिश्रित आबादीवाले इलाक़ों, बड़े औद्योगिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों में तो उनकी संख्या २००–३०० तक पहुंच जाती है। मध्य एशिया के कतिपय नगरों में ३५ प्रतिशत से अधिक विवाह मिश्रित विवाह होते हैं।

तातार स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र में एक सर्वेक्षण के दौरान पूछे गये लोगों से पता चला कि ६० से ८० प्रतिशत तक मिश्रित विवाहों के पक्ष में थे।

बहुत से सोवियत समाचारपत्रों को अन्तर्जातीय परिवारों के जीवन के संबंध में मिलनेवाले पत्र काफ़ी दिलचस्प सामग्री प्रस्तुत करते हैं। यहां हम युवा लोगों के समाचारपत्र 'कोम्सोमोल्स्काया प्राव्दा' को मिले पत्रों से कुछ उद्धरण देना चाहेंगे।

"मैं पोल हूं," ग० गोंचारेंको लिखती हैं, "और लिथुआनिया में रहती थी। मैंने एक उक्रइनी सिपाही से शादी की। उसके बाद हम दोनबास चले गये और अब यहीं मेरा घर है। मेरे पति और सास-ससुर मुझे चाहते हैं और मैं भी उन्हें चाहती हूं। हम सुखी हैं।"

"मेरी इच्छा के विपरीत मेरी बेटी और बेटे ने अन्य जातियों के लोगों से विवाह किया," एक आरमीनियाई अ० ईओनेस्यान ने लिखा था। "मगर क्या इसी वजह से मैं अपने नाती-पोतों को अपना मानना छोड़ दूंगा?"

"मैं जानता हूं कि पुराने दुराग्रह मिश्रित विवाहों में कितने बाधक होते हैं। युवा लोगों में सुखी वही हो सकता है, जो अपने माता-पिता की राष्ट्रीय भावनाओं का अपमान किये बिना पुरातनता के बंधनों को तोड़ता है," उज़्बेक र० अक्रमोव लिखते हैं।

ऐसे पत्र अनगिनत हैं। उनमें से किसी ने भी यह सवाल नहीं उठाया है कि मिश्रित विवाहों की सन्तान को किस राष्ट्रीयता या जाति का माना जाये। समाजवादी सहजीवन के नियमों के अनुसार परिवार जैसा चाहते हैं, वैसे ही इस सवाल को हल कर लेते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि मिश्रित विवाह और बहुराष्ट्रिक कर्मीसमूहों में संयुक्त श्रम प्रगतिशील प्रवृत्तियां हैं। वे विभिन्न जनों को एक दूसरे के निकट लाती हैं और सभी सोवियत लोगों को एक परिवार के रूप में एकजुट बनाती हैं।

राष्ट्रों के सन्निकटन और उनके आत्मिक विकास के बारे में सोवियत संघ के विभिन्न जनों के प्रतिनिधियों के लेख, पत्र, आदि सोवियत पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः छपते रहते हैं। उदाहरण के लिए, ८ जुलाई, १९७१ को 'प्राव्दा' समाचारपत्र में छपे "एक परिवार की तरह" शीर्षक पत्र में म० ज़स्तोल्स्की ने, जो पेशे से अध्यापक हैं, लिखा था:

"मैं त्यानशान पहाड़ों के दामन में बसे छोटे से केलतेमशत बस्ती (तियुलकुबास ज़िला) के बारे में बताना चाहता हूं। इस बस्ती का जन्म हाल ही में यहां लिग्नाइट की खानें चालू किये जाने से जुड़ा हुआ है। यहां पन्द्रह जातियों के लोग बड़े हेलमेल से और एक परिवार की तरह रहते हैं। केलतेमशत ने दर्जनों डाक्टर, अध्यापक, कृषिविशेषज्ञ और इंजीनीयर पैदा किये हैं। मैं एक ही परिवार के बारे में बताऊंगा।

"क़ज़ाख़ सोवियत समाजवादी जनतंत्र के सम्मानित अध्यापक, कम्युनिस्ट शईम शैख़ियेविच मिर्ज़ाबिकोव लगभग चालीस वर्ष से अध्यापन कार्य कर रहे हैं। उनकी पत्नी अमीना केनेन्बायेव्ना भी अध्यापिका हैं।

"मिर्ज़ाबिकोव दम्पति की नौ सन्तानें हैं। सभी ने जीवन में अपनी राह बना ली है या बना रहे हैं। सबसे बड़े बेटे सुल्तान ने स्कूल में स्वर्ण पदक पाया, अल्मा-अता के पशुचिकित्सा संस्थान में उच्च शिक्षा पूर्ण की और फिर शोध किया। अब वह कृषिविज्ञान के कैण्डीडेट हैं और पशुचिकित्सा संस्थान में प्राध्यापक के पद पर काम करते हैं। बड़ी बेटी

बयान स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद अपने माता-पिता के चरणचिह्नों पर चली और बस्ती के ही स्कूल में रूसी भाषा और साहित्य पढ़ाती है। दूसरा बेटा सरिक जांबूल शहर के जल-भूउद्धरण संस्थान में पढ़ता है और बेटी गुलनारा अल्मा-अता के राजकीय चिकित्साविज्ञान संस्थान में। उसने भी स्कूल में स्वर्ण पदक पाया था।

"तीसरी बेटी सऊले बैले नर्तकी बनना चाहती है और मास्को के नृत्यकला विद्यालय में पढ़ती है। उसकी छोटी बहन अल्मा ने स्कूल में स्वर्ण पदक पाया और अब क़ज़ाख़ राजकीय विश्वविद्यालय में दूसरे वर्ष की छात्रा है। तीसरे बेटे बुलात ने अपने सबसे बड़े भाई का रास्ता अपनाया और पशुचिकित्सा संस्थान में पांचवें वर्ष में पढ़ रहा है। सबसे छोटे बच्चे अबाई और मीरानकूल स्कूल में पढ़ाई में सबसे आगे-आगे रहते हैं। भविष्य के बारे में उनकी भी अपनी योजनाएं हैं। हमारे सोवियत देश में सभी किशोरों के स्वप्न पूरे होकर रहते हैं और मुझे विश्वास है कि इनके स्वप्न भी ज़रूर पूरे होंगे।"

सोवियत देश के विभिन्न जनों के जीवन में घट हो रही अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्जातीय प्रक्रियाओं का लेखाजोखा करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था कि सोवियत संघ के विभिन्न जनों के परस्पर सन्निकटन की प्रक्रिया में "राष्ट्रीय विशिष्टताओं और समाजवादी राष्ट्रीय संस्कृतियों के विकास को पूरा-पूरा ध्यान में रखा जाता है। इस प्रश्न पर पार्टी की नीति का सार यही है कि हमारे सारे संघ के साझे हितों के साथ-साथ उसमें शामिल हर जनतंत्र के हितों को भी लगातार ध्यान में रखा जाये।"

सोवियत संघ में ही नहीं, अपितु विश्व समाजवादी प्रणाली के दायरे में भी राष्ट्रों का सन्निकटन वर्तमान युग की एक शानदार विशेषता है। स्वयं जीवन यह आवश्यक बना रहा है कि बंधु समाजवादी देश आपस में और अधिक घनिष्ठ आर्थिक तथा राजनीतिक सहयोग करें। आपस में एक दूसरे का हाथ बंटाते हुए सोवियत जनतंत्र साथ ही अन्य समाजवादी देशों की मदद करते हैं। ऐसी ही मदद उन देशों से सोवियत संघ को भी मिलती है। मिसाल के लिए, कीरोवाबाद की क़ालीन फ़ैक्टरी को यंत्रसामग्री से लैस करने में जर्मन जनवादी जनतंत्र, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया ने

हिस्सा लिया। द्रूज्बा तेलपाइपलाइन का निर्माण चेकोस्लोवाक, हंगेरियाई, पोलिश और जर्मन निर्माताओं की मदद से किया गया है।

समाजवादी देशों की आर्थिक योजनाओं के समन्वयन और पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद द्वारा निर्धारित समाजवादी एकीकरण बढ़ाने के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से भी समाजवादी राष्ट्रों के उत्तरोत्तर एक दूसरे के निकट आने में सहायता मिलती है। पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के पच्चीसवें अधिवेशन (१९७१) में स्वीकार किया गया कि परिषद के सदस्य देशों के सहयोग को आगे बढ़ाने तथा बेहतर बनाने और उनके समाजवादी आर्थिक एकीकरण के विकास से संबंधित सर्वांगीण कार्यक्रम समाजवादी राष्ट्रों की मैत्री के सुदृढ़ीकरण की दिशा में नया महत्त्वपूर्ण क़दम है। पच्चीसवीं पार्टी कांग्रेस में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "यह कार्यक्रम समाजवादी देशों के परस्पर सहयोग को कहीं अधिक ऊंचे स्तर पर पहुंचा देता है।"

समाजवादी राष्ट्रों की बिरादरी का आधार यह है कि उन सबकी एक ही जैसी आर्थिक व्यवस्था (उत्पादन साधनों पर सारे समाज का अधिकार), राज्य प्रणाली (मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में जनता की सरकार) और विचारधारा (मार्क्सवाद-लेनिनवाद) है।

सारे समाजवादी शिविर के आगे बढ़ने के लिए ज़रूरी है कि हर समाजवादी देश विकास करे और मज़बूत बने। प्रत्येक समाजवादी देश में आर्थिक योजनाओं की सफल पूर्ति, सामाजिक संबंधों का परिष्करण और सर्वांगीण प्रगति होने से समाजवाद के साझे ध्येय को लाभ पहुंचेगा।

समाजवादी देशों में परस्पर लाभ के आधार पर उत्पादन सहयोग और औद्योगिक विशेषीकरण शनैः शनैः बढ़ता गया है। इसके फलस्वरूप हर देश में उन उद्योग शाखाओं का तेज़ी से विकास संभव बना है, जो वहां पहले से ही मौजूद थीं। इसी तरह इन शाखाओं की लाभदायिता में भी वृद्धि हुई है। पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों के बीच आर्थिक तथा वैज्ञानिक सहयोग का गहन बनना और उनके समाजवादी एकीकरण का बढ़ना इन देशों में घट रही अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रम विभाजन, अर्थव्यवस्थाओं के सन्निकटन और राष्ट्रीय अर्थतंत्रों के आधुनिक, बहुत ही कारगर ढांचे के निर्माण की प्रक्रिया का अंग है, जिसका इन देशों की कम्युनिस्ट तथा मज़दूर पार्टियां तथा सरकारें सचेतन और

योजनाबद्ध ढंग से नियंत्रण करती हैं। यह इन देशों के आर्थिक विकास स्तरों को शनैः शनैः समान बनाने, अर्थव्यवस्था, विज्ञान और तकनीक के मुख्य-मुख्य क्षेत्रों में गहन तथा स्थायी संपर्क क़ायम करने, इन देशों की अन्तर्राष्ट्रीय मंडी को बढ़ाने और माल तथा वित्त संबंधों को बेहतर बनाने की प्रक्रिया है।

इसके फलस्वरूप समाजवादी देशों के संसाधनों का अधिक कारगर उपयोग करने और वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति को व्यापकतर बनाने के लिए अनुकूल परिस्थितियां तैयार होती हैं। ज्ञात है कि आज वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति पूंजीवाद और समाजवाद के बीच ऐतिहासिक प्रतियोगिता का एक मुख्य क्षेत्र और समाजवादी समाज के विकास की एक मुख्य शर्त है।

पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों के समाजवादी आर्थिक एकीकरण विषयक सर्वांगीण कार्यक्रम में कहा गया है, "समाजवादी राष्ट्रमण्डल के देशों के आर्थिक विकास के स्तरों को शनैः शनैः एक दूसरे के निकट लाना और समान बनाना विश्व समाजवादी प्रणाली के विकास की एक वस्तुगत ऐतिहासिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया समाजवादी देशों में प्रचलित उत्पादन संबंधों के समाजवादी स्वरूप और इन देशों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग तथा परस्पर सहायता के विकास से संबद्ध है।

"समाजवाद तथा कम्युनिज़्म निर्माण के महत्त्वपूर्णतम लक्ष्य, यानी समाजवादी देशों में सामाजिक श्रम की उत्पादिता का पूंजीवादी देशों की अपेक्षा अधिक ऊंचा स्तर हासिल करने के लक्ष्य की प्राप्ति को पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों के आर्थिक विकास स्तरों को शनैः शनैः एक दूसरे के निकट लाने और समान बनाने की प्रक्रिया से अभिन्न रूप से जोड़ा जा रहा है।"

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्त के अनुसार और राज्यों की सर्वसत्ता, स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय हितों के आदर, अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप, पूर्ण समानता, परस्पर लाभ तथा बंधुत्वपूर्ण परस्पर सहायता के आधार पर पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों के बीच सभी क्षेत्रों में सहयोग को आगे भी बढ़ाया तथा बेहतर बनाया जायेगा। ऐतिहासिक अनुभव ने नये प्रकार के अन्तर्राज्यीय संबंधों के इन मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों की जीवनीशक्ति को पूरी तरह

प्रमाणित कर दिया है। ये सिद्धान्त हर देश में समाजवाद निर्माण की वस्तुगत आवश्यकताओं तथा विश्व समाजवादी प्रणाली के विकास की शर्तों के अनुकूल हैं और व्यापक तथा फलप्रद अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की पक्की नींव डालने में सहायक होते हैं।

सोवियत संघ के विभिन्न जनों के बीच समानता, मैत्री और सहयोग के संबंध पूरी तरह क़ायम हो चुके हैं, जिसके फलस्वरूप हर राष्ट्र और जाति ने उत्थान किया है और उनका सन्निकटन बढ़ा है। यह पूंजीवाद के मुक़ाबले समाजवाद की उत्कृष्टता का एक सबूत है। केवल समाजवादी व्यवस्था ही भूतपूर्व पददलित राष्ट्रों और जातियों के सदियों से चले आ रहे पिछड़ेपन, राष्ट्रीय झगड़ों तथा शत्रुता को ख़त्म कर सकी और सभी जनों को एक अटूट बंधुत्वपूर्ण संघ में एकजुट बना सकी। समाजवाद ही ऐसी एकमात्र व्यवस्था है, जो जनों को विभाजित करने के बजाय, उल्टे, उन्हें एक दूसरे के निकट लाती है, एकताबद्ध बनाती है। कम्युनिज़्म का निर्माण राष्ट्रों और जातियों के परस्पर संबंधों में एक नया अध्याय शुरू करता है।

जैसा कि हम बता चुके हैं, मार्क्सवाद-लेनिनवाद सिखाता है कि राष्ट्रों के सन्निकटन के मामले में जल्दबाज़ी दिखाना ग़लत और हानिकर है। मगर जर्जर राष्ट्रीय ढांचों को ढहने से जानबूझकर रोकना और कृत्रिम ढंग से उन्हें सुरक्षित रखना भी उतना ही हानिकर है।

जिस तरह सर्वहारा अधिनायकत्व के संक्रमण काल से गुज़रकर ही वर्गों का ख़ात्मा हो सकता है, उसी तरह राष्ट्रों और जातियों का परस्पर विलयन भी तभी होगा, जब मानवजाति सभी राष्ट्रों की पूर्ण मुक्ति और उत्थान के संक्रामक दौर से गुज़रेगी। व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "वर्ग उत्पीड़न **के बिना** उत्पादन संगठित कर, राज्य के **सभी** सदस्यों की ख़ुशहाली सुनिश्चित कर समाजवाद आबादी की 'सहभावनाओं' को **पूरी** छूट देता है और इस प्रकार राष्ट्रों के सन्निकटन तथा विलयन को अग्रसर तथा अत्यधिक त्वरित करता है।"*

---

*व्ला० इ० लेनिन : 'आत्मनिर्णय की बहस के परिणाम' (१९१६)।

व्ला० इ० लेनिन ने कहा था कि राष्ट्रीय भेद अभी बहुत समय तक बने रहेंगे। उन्होंने राष्ट्रों के सर्वांगीण विकास तथा सन्निकटन के दौर से गुज़रे बिना ही सीधे उनके विलयन के बारे में सोचने के विरुद्ध आगाह किया था।

राष्ट्रों का विलयन एक जटिल और दीर्घकालीन प्रक्रिया है। उसके संपन्न होने के लिए ज़रूरी है कि, पहले, सारे विश्व में पूंजीवाद का ख़ात्मा तथा उत्पीड़ित राष्ट्रों तथा जातियों को पूर्णतः मुक्त किया जाये सभी राष्ट्र एक दूसरे के निकट आयें, सभी लोगों के बीच आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एका क़ायम हो तथा राज्य की आवश्यकता न रहे, यानी सभी देशों में कम्युनिज़म विजयी हो जाये, और, दूसरे, विभिन्न जनों के बीच भाषायी अन्तर न रहें।

वर्तमान काल में विश्व में २ हज़ार से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं और लगभग २०० भाषाओं में साहित्य प्रकाशित होता है। बहुत से जनों की भाषाओं को, जिनकी पहले अपनी कोई लिपि नहीं थी, लिखित भाषा का रूप दिया जा रहा है। मगर दूसरी ओर वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति और सर्वव्यापी प्रगति विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच मौजूद भाषायी दीवार को तोड़ने और एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाये जाने की आवश्यकता भी पैदा कर रही हैं।

यह कैसे होगा, अभी कहना कठिन है। मगर इतना निश्चित है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा राष्ट्रों के विलयन और अन्तर्राष्ट्रीय समाज बनने की एकीभूत विश्वव्यापी प्रक्रिया के अभिन्न अंग के तौर पर ही पैदा होगी।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी समाजवादी राष्ट्रों के और भी अधिक तरक़्क़ी करने तथा एक दूसरे के निकट आने की वस्तुगत प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में हर तरह से मदद कर रही है। वह राष्ट्रीय अन्तरों को मिटाने का काम कृत्रिम ढंग से तेज़ किये जाने का विरोध तो करती ही है, मगर साथ ही उन सब बातों का भी विरोध करती है, जो समाजवादी राष्ट्रों के सन्निकटन की सहज, ऐतिहासिक प्रक्रिया में बाधा बनती हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस में केन्द्रीय समिति की रिपोर्ट पेश करते हुए लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था, "समाजवादी राष्ट्रों के उत्थान तथा क्रमिक सन्निकटन की लेनिनीय नीति को सुसंगत

रूप से क्रियान्वित करते हुए पार्टी सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ को आगे भी सुदृढ़ बनाती रहेगी। पार्टी सभी मेहनतकशों में समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना, राष्ट्रवाद, अंधराष्ट्रवाद, राष्ट्रीय संकीर्णता तथा दंभ की सभी तरह की अभिव्यक्तियों के प्रति असहिष्णुता की भावना, सभी राष्ट्रों और जातियों के प्रति गहन सम्मान की भावना आगे भी भरती रहेगी।"

* * *

सोवियत संघ की पचासवीं वर्षगांठ से संबंधित अपनी रिपोर्ट में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था कि राष्ट्रीय नीति के क्षेत्र में पायी गयी सफलताओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि देश में राष्ट्रीय प्रश्न को उस रूप में **पूरी तरह** हल कर दिया गया है, जिस रूप में वह अतीत से विरासत में मिला था।

इसका यह अर्थ है कि सोवियत संघ में राष्ट्रीय वैमनस्यों और कलहों का अन्तिम रूप से और सदा के लिए ख़ात्मा कर दिया गया है और सभी जनों के बीच मैत्री तथा भ्रातृत्व के संबंध क़ायम हो गये हैं।

इसका यह अर्थ है कि सोवियत संघ में राष्ट्रों की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक असमानता का पूर्ण उन्मूलन कर दिया गया है और पहले जो जन पिछड़े हुए माने जाते थे, वे आज उन्नत राष्ट्रों के स्तर पर पहुंच गये हैं।

इसका यह अर्थ है कि सोवियत संघ में राष्ट्रों के उत्थान तथा सन्निकटन की प्रक्रिया चल रही है।

इसका यह अर्थ है कि सोवियत संघ में समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आधसंख्य लोगों के जीवन तथा आचरण का अंग बन गया है।

लेओनीद ब्रेज्नेव ने ठीक ही कहा था कि राष्ट्रीय समस्या का समाधान उद्योगीकरण, कृषि सामूहिकीकरण और सांस्कृतिक क्रांति जैसी महती उपलब्धियों की श्रेणी में आता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की पच्चीसवीं कांग्रेस के निर्णय कम्युनिज़्म के रास्ते पर सोवियत जनगण के महान परिवार के और अधिक शक्तिशाली तथा एकताबद्ध होने में योग देंगे।

८. सोवियत जन

मैं सोवियत आदमी हूं!

विश्व के पहले समाजवादी देश का नागरिक इस तरह अपना परिचय देता है। इन शब्दों से जहां उसका यह गर्व झलकता है कि वह एक महान जनता का प्रतिनिधि है, वहां इस महान जनता के भविष्य के प्रति उसका उत्तरदायित्व भाव भी प्रकट होता है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध (१९४१–१९४५) के दिनों की घटना है। स्तालिनग्राद की लड़ाई में बन्दी बनाये गये एक जर्मन जनरल को जब यह मालूम हुआ कि उसकी फ़ौजों का मुक़ाबला जार्जियाई सैनिकों की डिविज़न से हुआ था, तो उसने कहा, "आप रूसियों की ख़ूब मदद करते हैं।" इसपर उसे जो जवाब मिला, वह यह था: "अरे मूर्ख, हम तो एक ही जन हैं।"

सोवियत जन सोवियत संघ में पैदा हुआ लोगों की समूहबद्धता का नया ऐतिहासिक रूप है।

उसका आविर्भाव समाजवाद के निर्माण का फल और देश में लेनिनीय राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन का परिणाम है।

एक नये ऐतिहासिक समुदाय के रूप में सोवियत जन का निर्माण सोवियत सत्ता के आरंभिक वर्षों से ही होने लग गया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि शुरू में यह प्रक्रिया धीमी थी, क्योंकि समाजवादी क्रांति के बाद आरंभिक वर्षों में उसके तेज़ी से बढ़ने के लिए पर्याप्त

सामाजिक-आर्थिक आधार उपलब्ध नहीं था। किन्तु ज्यों-ज्यों समाजवाद निर्माण का कार्य सफलतापूर्वक पूरा होता गया, उसका भौतिक-तकनीकी आधार तैयार हुआ और देश में शोषक वर्गों का ख़ात्मा किया गया, त्यों-त्यों सोवियत जन का निर्माण भी तेज़ होने लगा।

आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का अन्त तथा सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना, समाजवादी आर्थिक प्रणाली का सूत्रपात, विभिन्न जनों के बीच मौजूद वास्तविक असमानता का ख़ात्मा और सोवियत संघ में समाजवाद की पूर्ण तथा अंतिम विजय समूहबद्धता के इस रूप का आधार थी। राजनीतिक क्षेत्र में सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना, शोषक वर्गों का निर्मूलन और मज़दूरों तथा किसानों के संघ का सुदृढ़ीकरण और सभी सोवियत जनतंत्रों का एक संघीय राज्य—सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ—में एकताबद्ध होना उसका आधार था। विचारधारा के क्षेत्र में उसका आधार मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्वदृष्टिकोण तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों की विजय और महाशक्तिवादी अंधराष्ट्रवाद तथा स्थानीय बूर्जुआ राष्ट्रवाद की वैचारिक पराजय ने प्रस्तुत किया।

कम्युनिज़्म निर्माण के युग में सोवियत जन एक नये चरण में प्रवेश कर रहा है। इसमें समस्त सोवियत जनता का राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से मज़बूत बनना, वर्गीय अन्तरों का मिटना और इस आधार पर राष्ट्रों तथा जातियों की सामाजिक एकरूपता का बढ़ना बड़ी भूमिका अदा करते हैं।

इनमें से कुछ बातों का ख़ुलासा करके दिखायें।

कारख़ानों, भूमि, आदि पर निजी स्वामित्व, जो बूर्जुआ राष्ट्रों का आर्थिक आधार है, राष्ट्रीय वैमनस्य तथा भेदभाव को जन्म देता है। मगर समाजवादी स्वामित्व सभी राष्ट्रों के बीच समानता बढ़ने में सहायक बनता है। सोवियत संघ में सभी राष्ट्र और जातियां मिल-जुलकर समाजवादी सार्वजनिक संपत्ति का सृजन तथा परिवर्द्धन करती हैं।

बूर्जुआ राष्ट्र विरोधी वर्गों—शोषक और शोषित वर्गों—से बना होता है। उसके विपरीत सोवियत जन की सामाजिक और वर्गीय प्रकृति ऐसी है कि उसमें सम्मिलित वर्गों तथा वर्गीय तबक़ों मज़दूरों, किसानों तथा बुद्धिजीवियों—के बीच आपस में कोई विरोधभाव नहीं होता। सोवियत

जन देश के सभी मेहनतकशों का समाजवादी संघ है, चाहे वे उद्योग के क्षेत्र में काम करते हों या कृषि, विज्ञान अथवा संस्कृति के क्षेत्र में, चाहे वे शारीरिक श्रम करते हों या बौद्धिक श्रम। अतः कहा जा सकता है कि सोवियत जन सामाजिक अर्थ में समूहबद्धता का नया रूप है।

सोवियत जन में देश की सभी जातियों और राष्ट्रों के क्रांतिकारिता, कामकाजीपन, कठिनाइयों से अथक संघर्ष, आशावाद, मैत्रीभाव, आदि गुणों का सम्मिश्रण पाया जाता है।

सोवियत जन में सोवियत संघ के सभी राष्ट्रों और जातियों के आत्मिक चरित्र की आम विशेषताएं और उनकी सर्वाधिक प्रगतिशील प्रवृत्तियां साकार बनी हैं। आप सोवियत संघ में कहीं भी क्यों न जायें, सर्वत्र आपको नयी, सोवियत जीवन-पद्धति के आम लक्षण देखने को मिलेंगे। इस जीवन-पद्धति में सभी सोवियत राष्ट्रों के जीवन के सर्वोत्तम और सबसे अधिक प्रगतिशील तत्त्व शामिल हैं।

सोवियत जन उस वर्गीय और श्रेणीगत वैशिष्ट्यभाव से अपरिचित है, जो बूर्जुआ राष्ट्रों में पाया जाता है। अन्य राष्ट्रों तथा जातियों के प्रति रूखापन और वैरभाव उसकी प्रकृति के अंग नहीं हैं। वह उन सभी जनों को भी अपना भाई और मित्र मानता है, जो अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता, प्रगति, न्याय, मानवीयता और समाजवाद के लिए लड़ रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सोवियत जन की अवधारणा में सोवियत सघ के सभी राष्ट्र और जातियां सम्मिलित हैं, क्योंकि उन सबने मिल-जुलकर और एक ही मैत्रीपूर्ण परिवार के सदस्यों के तौर पर समाजवाद का निर्माण किया है और एक ही ढंग से विकसित हुए हैं। मगर अपने विकास के वर्तमान चरण में समूहबद्धता का यह नया ऐतिहासिक रूप सोवियत राष्ट्रों और जातियों का स्थान नहीं लेता है। दूसरे शब्दों में, अभी यह नहीं कहा जा सकता है कि सोवियत संघ में राष्ट्रों और जातियों का पृथक् अस्तित्व ख़त्म हो गया है। वास्तव में वे सभी अपनी पृथक् विशिष्टता सुरक्षित रखते हुए आगे विकास करते जा रहे हैं, हालांकि हर कोई अपने आपको, उचित ही, समस्त सोवियत जनता का अभिन्न अंग मानता है।

सोवियत जन की विशेषता यह है कि वह एक भी है और साथ ही बहुराष्ट्रिक भी। वह एक इसलिए है कि उसका एक ही सामाजिक,

राजनीतिक और आत्मिक आधार है। अतः सोवियत जन सामाजिक अर्थ में ही नहीं, वरन राष्ट्रों और जातियों के बीच नये प्रकार के संबंधों के प्रतिमान के रूप में भी एक नया ऐतिहासिक समुदाय है।

सोवियत जन २५ करोड़ से अधिक लोगों से बना है। जनसंख्या के हिसाब से सोवियत संघ का विश्व में तीसरा स्थान है। उसके ८० प्रतिशत से अधिक नागरिक अक्तूबर क्रांति के बाद जन्मे हैं। १९७१ में देश की आधी से अधिक आबादी की आयु ३० वर्ष से कम थी।

कुछ और आंकड़े दें, जो कभी-कभी बहुत कुछ बताते हैं।

अक्तूबर, १९१७ से पहले देश में शहरी आबादी १८ प्रतिशत थी। १९७० तक वह बढ़कर ५६ प्रतिशत हो गयी। औद्योगिक केन्द्रों में आबादी के संकेन्द्रण की दृष्टि से सोवियत संघ संयुक्त राज्य अमरीका से आगे है।

गत तीन जनगणनाओं के अनुसार रोज़गाररत आबादी में उच्च तथा माध्यमिक (पूर्ण तथा अपूर्ण) शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या १९३९ में १२.३ प्रतिशत, १९५९ में ४३.३ प्रतिशत और १९७० में ६५.३ प्रतिशत थी।

सोवियत संघ में स्कूली आयु के सभी बच्चे और किशोर पढ़ते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस के निर्णयों के मुताबिक सारे देश में दसवर्षीय शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। स्कूलों में शिक्षा ५२ भाषाओं में दी जाती हैं। यह तथ्य भी लाक्षणिक है कि क्रांतिपूर्व रूस में बुद्धिजीवियों की संख्या १० लाख से कम थी, जबकि आज वह इससे ३० गुना से अधिक है।

सोवियत संघ में दीर्घजीवी लोगों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। यहां प्रति १ लाख लोगों में से ८ लोग सौ वर्ष की आयुसीमा पार कर चुके हैं, जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में ५.८५, ग्रेट ब्रिटेन में ०.६ और जापान में ०.२ ही। ऐसा सोचना ठीक न होगा कि दीर्घजीविता काकेशियापार की आबादी का ही विशेषाधिकार है। दीर्घजीविता का उच्च अनुपात याकूतिया, अल्ताई, लिथुआनिया और कई अन्य इलाकों में भी पाया जाता है।

ये सब आंकड़े सोवियत समाज के सामाजिक सार का एक और प्रतिबिंब हैं।

छोटी-बड़ी सभी जातियों और राष्ट्रों की पूर्ण समानता का क्या अर्थ है, यह हम जान चुके हैं। राज्य संचालन के क्षेत्र से एक उदाहरण देकर इस परिचर्चा को ख़त्म करें।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत (संसद) में दो सदन हैं—संघीय सोवियत और जातीय सोवियत, और दोनों बहुराष्ट्रिक हैं। १९७० में उनमें ५९ राष्ट्रों और जातियों के प्रतिनिधि थे। अगर संघीय सोवियत में प्रति ३ लाख व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि होता है, तो जातीय सोवियत में, सर्वोच्च सोवियत के १६ मार्च, १९६६ के एक अध्यादेश के अनुसार, उनकी जनसंख्या कितनी भी क्यों न हो, हर संघीय जनतंत्र से ३२, हर स्वायत्त जनतंत्र से ११, हर स्वायत्त प्रदेश से ५ और हर जातीय क्षेत्र से १ प्रतिनिधि भेजा जाता है। इस तरह जातीय सोवियत के ७५० सदस्यों में से ६६ उन जातियों के प्रतिनिधि हैं, जिनकी आबादी देश की कुल आबादी के १ प्रतिशत से भी कम है।

सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों को समान अधिकार मिले हुए हैं। कोई भी क़ानून स्वीकृत तभी समझा जाता है, जब उसे दोनों सदन पास करें। पन्द्रह के पन्द्रह संघीय जनतंत्रों की सर्वोच्च सोवियतों के अध्यक्षमण्डलों के अध्यक्ष सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल के उपाध्यक्ष होते हैं। इसी तरह संघीय जनतंत्रों की मंत्रिपरिषदों के अध्यक्ष भी पदेन सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद में शामिल किये जाते हैं। आयोजना तथा न्यायपालिका के संघीय निकायों में भी जनतंत्रों को इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है। यही राष्ट्रीय प्रश्न के संबंध में सच्चे जनवाद की अभिव्यक्ति है!

सोवियत जन लोगों की समूहबद्धता का राष्ट्र से अधिक ऊंचा ऐतिहासिक रूप है। सोवियत जन ऐसी बहुत सी जातियों तथा राष्ट्रों का सम्मिश्रण है, जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और वैचारिक एकता के सूत्रों से, लक्ष्यों और हितों की एकता के सूत्रों से एक दूसरे से बंधे हुए हैं और एक ही देश में रहते हैं। सोवियत जन समाजवाद के आधार पर एकताबद्ध हुए वर्गों तथा सामाजिक तबक़ों का सुदृढ़ संघ है।

मानवजाति के इतिहास में पहली बार सोवियत जन ने ही एकीकरण, समेकन का इतना ऊंचा स्तर हासिल किया है। वह एक ऐसा समुदाय है, जो अपनी प्रकृति से बहुराष्ट्रिक होने के कारण समूहबद्धता के बहुत से भावी बहुराष्ट्रिक रूपों के विकास का मार्ग दिखाता है।

९. अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और देशप्रेम

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की आधुनिक अवधारणा के मूल में दो शब्द हैं–अन्तर् (बीच) और राष्ट्र (जन)। राजनीतिक भाषा में इस अवधारणा का अर्थ है सभी सर्वहाराओं के वीच, सभी देशों के मेहनतकशों के बीच एकता की विचारधारा और नीति।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विचार का प्रथम प्रतिपादन कार्ल मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने "कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र" में किया था, जिसमें यह विख्यात ऐतिहासिक नारा बुलंद किया गया था: "दुनिया के मजदूरो, एक हो!" यह नारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के वर्गीय सार को सबसे उत्तम ढंग से व्यक्त करता था। क्रांतिकारी संघर्ष के हर नये चरण में यह नारा नया अर्थ ग्रहण कर लेता था, हालांकि अपने सार की दृष्टि से वह सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की घनीभूत अभिव्यक्ति फिर भी बना रहता था।

"कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र" और अन्य रचनाओं में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रणेताओं ने बताया था कि हर देश, हर राष्ट्र का मज़दूर वर्ग अपने, स्थानीय बूर्जुआ वर्ग के विरुद्ध और समाजवाद की विजय के लिए लड़ता है। मगर साथ ही अपनी इस लड़ाई को वह अन्य देशों, अन्य राष्ट्रों के सर्वहाराओं के संघर्ष से असंबद्ध, असंयुक्त भी नहीं मानता। क्यों? इसके कारण निम्न हैं:

पहले, सभी देशों के मज़दूरों के कुछ साझे, मूलभूत हित होते हैं, जिनका संबंध पूंजी की सत्ता के उन्मूलन और अपने अधिनायकत्व की स्थापना से है।

दूसरे, एक वर्ग के नाते अन्तर्राष्ट्रीयतावाद सर्वहारा का स्वभावगत लक्षण है। इसका कारण यह है कि सर्वहारा बड़े पैमाने के उद्योग की उपज है, जिसने विश्वव्यापी मंडी बनायी और इस तरह समस्त भूमंडल के लोगों को एक दूसरे से जोड़ा।* आज जब साम्राज्यवाद के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष की भूमिका बढ़ गयी है, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के एक सर्वाधिक अटल वाहक के रूप में उसकी भूमिका और भी अधिक बढ़ जाती है।

तीसरे, सभी देशों के मज़दूरों का एक ही शत्रु है—अन्तर्राष्ट्रीय बूर्जुआ वर्ग, जिसकी शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी परस्पर सहायता और अपने वर्गीय हितों की रक्षा में है।

"पूंजी एक अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति है। उसे हराने के लिए मज़दूरों के अन्तर्राष्ट्रीय एकत्व, उनके अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व की ज़रूरत है," व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था।**

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के बारे में मार्क्सवाद की एक और प्रस्थापना को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये, जिसका संबंध छोटे और बड़े राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से है। जिस बड़े राष्ट्र के सत्तारूढ़ वर्ग समाजवादी क्रांति की विजय और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना से पहले छोटे राष्ट्रों का दमन करते थे, उसे राष्ट्रों की समानता की घोषणा और उसके औपचारिक पालन से ही अपने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की इतिश्री नहीं समझ लेनी चाहिये। उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि छोटे राष्ट्रों के प्रति पहले जो वास्तविक असमानता का व्यवहार होता आया था, उससे हुई क्षति की वह अपने ठोस कार्यों द्वारा भरपाई करे। व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था कि छोटे राष्ट्र चूंकि किसी भी तरह के असमान व्यवहार के मामले में बहुत ही संवेदनशील होते हैं, "चाहे वह लापरवाहीवश या मज़ाक़

---

* देखिये कार्ल मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स : 'जर्मन विचारधारा' (१८४६)।

** व्ला० इ० लेनिन : 'मज़दूरों तथा किसानों के प्रतिनिधियों को पत्र' (१९१९)।

में ही क्यों न किया गया हो," इसलिए "इस मामले में यह बेहतर है कि अल्पसंख्यक जातियों के साथ नम्रता और उदारता का व्यवहार आवश्यकता से अधिक किया जाये, न कि आवश्यकता से कम।" यह "सर्वहारा की एकता के मूलभूत हितों" की दृष्टि से अपेक्षित है।*

छोटे राष्ट्रों का अन्तर्राष्ट्रीयतावाद इसमें है कि वे अन्य राष्ट्रों के प्रति अपने अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कर्त्तव्य को निभायें, अपने कार्यकलाप में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग के लक्ष्यों का अनुगमन करें और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यदि कुछ त्याग भी करना पड़े, तो उसके लिए तैयार रहें। वर्तमान परिस्थितियों में किसी भी राष्ट्र का अन्तर्राष्ट्रीयतावाद सबसे पहले इस बात में प्रकट होता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग की रचना—विश्व समाजवादी प्रणाली का हर तरह से समर्थन तथा रक्षा करता है या नहीं।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की सबसे घनीभूत अभिव्यक्ति व्ला० इ० लेनिन के इन शब्दों में मिलती है: "अगर कोई अन्तर्राष्ट्रीयतावादी... होना चाहता है, तो यह ज़रूरी है कि वह अपने राष्ट्र के बारे में ही **न** सोचे और सभी राष्ट्रों के हितों को, उनकी सामान्य स्वतंत्रता तथा समानता को स्वयं अपने राष्ट्र **के ऊपर** स्थान दे।"**

विश्व समाजवादी प्रणाली के विकास के दौरान सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद में कुछ नये अभिलक्षण आये हैं और वह **समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद** बन गया है। सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, दोनों मिलती-जुलती परिघटनाएं हैं, मगर उनकी सामाजिक तथा ऐतिहासिक अन्तर्वस्तुओं में अन्तर किया जाना चाहिये।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का सामाजिक आधार विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के सर्वहाराओं के मूलभूत वर्गीय हितों की समानता होती है। किन्तु समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद न केवल सर्वहारा, अपितु

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'जातियों तथा स्वायत्तीकरण के मामले के बारे में' (१९२२)।

**व्ला० इ० लेनिन: 'आत्मनिर्णय संबंधी बहस के परिणाम' (१९१६)।

सभी मेहनतकशों, विश्व समाजवादी प्रणाली के देशों के सभी राष्ट्रों तथा जातियों की प्रमुख विचारधारा बन गयी है।

चूंकि विश्व समाजवादी प्रणाली विश्व साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में निर्णायक कड़ी है, इसलिए समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्त सारे विश्व के सर्वहाराओं तथा अन्य मेहनतकशों के मूलभूत वर्गीय हितों को व्यक्त करते हैं।

सर्वहारा और समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का देशप्रेम से कोई विरोध नहीं है। उल्टे, चूंकि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के समाजवादी सार का संबंध वर्गीय तथा सामाजिक संबंधों के क्षेत्र से है और उसकी अभिव्यक्ति शोषकों के विरुद्ध तथा समाज के समाजवादी नवीकरण के हेतु सभी राष्ट्रों के मेहनतकशों के संयुक्त संघर्ष में पायी जाती है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और देशप्रेम के बीच पूर्ण संगति है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद में आस्था रखनेवाले लोग अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और देशभक्त, दोनों होते हैं। १६६६ के अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन में इसका भरपूर उल्लेख कर दिया गया था।

देशप्रेम क्या है?

संक्षेप में कहें, तो देशप्रेम का अर्थ है अपने देश, अपनी मातृभूमि और अपनी जनता से प्रेम। राष्ट्र की भांति देशप्रेम भी एक निश्चित ऐतिहासिक परिघटना है, जिसकी सारवस्तु विभिन्न कालों में विभिन्न रही है।

देशप्रेम की विशेष तीव्र अभिव्यक्ति राष्ट्रों और राष्ट्रीय राज्यों के उद्‌भव काल में देखने को मिली थी। उस काल में उसका प्रवक्ता बूर्जुआ वर्ग था, क्योंकि वह सामन्तवाद तथा सामन्तवादी बिखराव के विरुद्ध संघर्ष करते हुए राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो रहा था। किन्तु जैसा कि ऐतिहासिक अनुभव से पता चला, बूर्जुआ वर्ग का देशप्रेम पूंजीवाद के विकास की आरंभिक अवस्था में ही इस वर्ग के शोषक हितों की पूर्ति का साधन बन गया। आगे चलकर तो बूर्जुआ वर्ग के देशप्रेम का पाखण्डी और नक़ली स्वरूप पूरी ही तरह से उघड़ गया।

इस संबंध में निम्न तथ्यों का हवाला देना ही पर्याप्त होगा। "देशप्रेम" और अपने राष्ट्र के "हितों" की आड़ में बूर्जुआ वर्ग ने पराये क्षेत्रों पर क़ब्ज़ा किया और औपनिवेशिक साम्राज्य बनाये। अपने राष्ट्र

के प्रति प्रेम का स्वांग रचते हुए उसने अन्य राष्ट्रों, विशेषत: पराधीन बनाये गये राष्ट्रों के प्रति अविश्वास और घृणा के बीज बोये। विश्व इतिहास में ऐसी मिसालों की कमी नहीं है, जब अपना प्रभुत्व और अपनी समृद्धि बनाये रखने के लिए बूर्जुआ वर्ग ने राष्ट्रीय हितों से ग़द्दारी की, अपनी मातृभूमि से द्रोह किया।

सच्चे देशभक्त, अपनी मातृभूमि और राष्ट्र के हितों के सच्चे रक्षक अगर कोई हैं, तो वे आम लोग ही हैं। वे ही राष्ट्रीय स्वाधीनता के अटल प्रहरी हैं और वे ही विदेशी क़ब्ज़ावरों के विरुद्ध – और अपने राष्ट्रीय बूर्जुआ वर्ग के विरुद्ध भी – प्राणपण से संघर्ष करते हैं। शोषक वर्ग नहीं, बल्कि मेहनतकश जनता ही अपने देश, अपने राष्ट्र के भाग्य और इतिहास की सच्ची चिन्ता करती है। सच्चा राष्ट्रीय गौरव उसी में पाया जाता है।

इस संबंध में व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "क्या हम, रूसी वर्गचेतन सर्वहाराओं के लिए राष्ट्रीय गौरव की भावना बिरानी है? नहीं, निश्चय ही नहीं। हम अपनी भाषा से प्यार करते हैं, अपने देश से प्यार करते हैं और **उसकी** मेहनतकश जनता को (अर्थात **उसकी** आबादी के नौ-दशांश भाग को) जनवादी और समाजवादी चेतना के स्तर तक लाने का पूरा प्रयत्न करते हैं।"*

समाजवादी क्रांति की विजय के साथ एक नये, ऊंचे प्रकार का देशप्रेम जन्म लेने लगता है, जिसे **समाजवादी देशप्रेम** कहते हैं और जो शोषक वर्गों के ख़ात्मे के बाद बढ़ता और मज़बूत होता है।

इसे ऊंचे प्रकार का देशप्रेम क्यों कहते हैं?

पददलित, शोषित जनता में देशप्रेम की भावना पूरी तरह विकसित नहीं हो पाती है, क्योंकि शोषक वर्ग इसमें आड़े आते हैं। इस भावना के पूरी तरह प्रस्फुटित होने के लिए मनुष्य का शोषण से मुक्त होना और अपनी मातृभूमि का सक्रिय सपूत बनना आवश्यक है। ऊंचे प्रकार के देश-प्रेम – समाजवादी देशप्रेम – का जन्म और विकास तभी हो सकता है, जब शोषक वर्गों का ख़ातमा हो, सर्वहारा अधिनायकत्व क़ायम किया

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'रूसी लोगों के राष्ट्रीय गर्व के बारे में' (१९१५)।

जाये और सभी उत्पादन साधनों को सारे समाज की संपत्ति बनाया जाये।

सोवियत संघ में समाजवादी देशप्रेम विकसित हो चुका है। उसकी अनेक गुणात्मक विशेषताएं हैं। वह मज़दूरों, किसानों, बुद्धिजीवियों और सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों तथा जातियों की अपनी समाजवादी मातृभूमि के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना पर आधारित है। वह सभी जनों की राष्ट्रीय परंपराओं और देश के सभी मेहनतकशों के मूलभूत हितों के बीच लयात्मक सामंजस्य स्थापित करता है। समाजवादी देशप्रेम की शक्ति इसमें है कि वह वस्तुतः समस्त जनता का देशप्रेम है। वह समाज की एक प्रबल प्रेरक शक्ति है। कौन किस जाति या राष्ट्र का है, इसकी परवाह किये बिना देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार देनेवाला समाजवादी जनवाद उसका राजनीतिक आधार है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वर्षों (१९४१–१९४५) में सोवियत समाजवादी देशप्रेम लड़ाई और श्रम, दोनों ही मोर्चों पर वीरता दिखाने का एक सबसे प्रभावशाली प्रेरणास्रोत था। सोवियत संघ के विकास के वर्तमान, शांतिमय चरण में यह देशप्रेम सोवियत लोगों को आर्थिक योजनाओं की पूर्ति तथा अतिपूर्ति करने के लिए, कम्युनिज़्म के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करता है।

समाजवादी समाज में लोगों का अपने बाप-दादाओं की धरती, अपनी संस्कृति, भाषा, परंपराओं तथा प्रथाओं से लगाव समाजवादी व्यवस्था के प्रति गहरी वफ़ादारी और सोवियत परिवार के अन्य सदस्य राष्ट्रों तथा जातियों के प्रति प्रेम से एकाकार हो जाता है। इस तरह देशप्रेम की भावना राष्ट्रीयता की सीमाएं पार कर लेती है और नयी अन्तर्वस्तु से भरपूर हो जाती है। सोवियत देशभक्त किसी भी जनतंत्र में क्यों न रहते हों, वे सभी समाजवादी मातृभूमि की सन्तान हैं और उनकी धरती पर जो कुछ भी बनाया या रचा गया है, वह सब उनके साझे श्रम का फल, उन सबकी साझी संपत्ति है।

सोवियत संघ के छोटे-बड़े, सभी जनों को अपने इतिहास पर गर्व है और हर कोई अपनी प्रगतिशील परंपराओं, राष्ट्रीय वीरों, इत्यादि का सम्मान करता है। किन्तु ये देशभक्तिपूर्ण भावनाएं उससे बेमेल नहीं है, जिसे हम "एक ही परिवार की भावना" कहते हैं, क्योंकि हर समाजवादी

राष्ट्र का देशप्रेम सारतः अपनी साझी मातृभूमि से प्रेम और समाजवादी व्यवस्था के प्रति वफ़ादारी ही है।

समाजवाद की रक्षा तथा सुदृढ़ीकरण और कम्युनिज़्म के लिए संघर्ष सोवियत संघ के नागरिकों के देशभक्तिपूर्ण कार्यकलाप का मुख्य और निर्णायक क्षेत्र था और है। इसमें सोवियत लोगों की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय, सभी भावनाएं एकाकार हो जाती हैं।

समाजवाद में अन्तर्राष्ट्रीय तत्त्व राष्ट्रीय तत्त्वों से, या जो हर राष्ट्र की अपनी विशेषता है, उनसे अलग रहकर नहीं, बल्कि उनके साथ अन्योन्यक्रिया करते हुए ही विकसित होते हैं।

इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में नये, आपस में सहयोग करनेवाले सभी जनों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण मूल्य पैदा होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अपने आपमें राष्ट्रीय की संपन्नता तथा बहुविधता को समाहित कर लेता है। सभी जनों के जीवन का अभिन्न अंग बनते हुए अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रीय प्रक्रियाओं के विकास को नयी प्रगतिशील दिशा देता है।

हम अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं! सोवियत संघ का प्रत्येक सचेतन मज़दूर, किसान और बुद्धिजीवी ऐसे कह सकता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी इसके लिए भरसक प्रयत्नशील रहती है कि सोवियत संघ का हर नागरिक पक्का अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और जन मैत्री तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर एकता के आदर्शों में गहन आस्था रखनेवाला बने।

सोवियत लोग अपने अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होने का सबूत अनेक बार दे चुके हैं। उस राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य सहायता की ही याद करें, जो फ़ासिज़्म के विरुद्ध संघर्ष में रिपब्लिकन स्पेन को और जापानी क़ब्ज़ावरों के विरुद्ध संघर्ष में मंगोल लोक जनतंत्र को दी गयी थी। सोवियत नागरिकों का खून स्पेन के मोर्चों पर भी और मंगोलिया की स्तेपियों में भी बहा था। यह दूसरे महायुद्ध से पहले की बात है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के दौरान सोवियत संघ ने न केवल जर्मन तथा इतालवी फ़ासिज़्म और जापानी सैन्यवाद की कमर तोड़ने में निर्णायक भूमिका अदा की, बल्कि यूरोप तथा एशिया के बहुत से देशों को मुक्त तथा स्वाधीन भी बनाया। इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी कि इस युद्ध के दौरान सोवियत संघ ने अपने आत्मत्यागपूर्ण संघर्ष से पूरे के पूरे राष्ट्रों और जातियों को समूल विनाश से बचाया और दूसरे राष्ट्रों को फ़ासिस्ट

राज्यों का ग़ुलाम नहीं बनने दिया। इसके लिए उसने अपने २ करोड़ लोगों की आहुति दी। युद्ध के मैदान में उसके करोड़ों नागरिक घायल हुए, अपाहिज बने। यही समाजवादी राष्ट्र का वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद है।

सोवियत तथा चीनी जनता के संबंध भी सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का एक ज्वलंत पृष्ठ हैं। चीन में जब पहला आन्तरिक क्रांतिकारी युद्ध चल रहा था, सोवियत संघ ने तभी चीन को बड़ी मात्रा में शस्त्रास्त्र, खाद्यान्न और दवाइयां दी थीं। फिर जब चीनी जनता ने जापानी साम्राज्य-वादियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा, तो यह सहायता और बढ़ गयी। हज़ारों सोवियत सैनिक सलाहकार, प्रशिक्षक, विमानचालक, ट्रकचालक तथा अन्य विशेषज्ञ चीन पहुंचे, जिनमें से बहुत से चीन की स्वाधीनता की ख़ातिर अपने प्राणों की आहुति देने से भी न चूके। इससे भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अगस्त, १९४५ में साम्राज्यवादी जापान के विरुद्ध युद्ध में सोवियत संघ के प्रवेश के फलस्वरूप ही सुदूर पूर्व में शत्रु को पराजित किया जा सका और जापानी क़ब्ज़ावरों से चीन की मुक्ति का काम तेज़ हो सका। जापानी साम्राज्यवाद की पराजय चीनी क्रांति की विजय का एक निर्णायक कारक बनी।

१९४९ में चीनी लोक गणतंत्र की स्थापना के बाद भी चीन की क्रांतिकारी शक्तियों को सोवियत सहायता का सर्वोच्च महत्त्व कम नहीं हुआ। सोवियत संघ, अन्य समाजवादी देशों और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट तथा मज़दूर आन्दोलन से मिले समर्थन ने चीन को तेज़ी से बूर्जुआ-जनवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति में संक्रमण करने में मदद दी।

सोवियत सहयोग से चीन में कुल मिलाकर २५० से अधिक बड़े औद्योगिक उद्यम, वर्कशाप, आदि बनाये गये, जो आधुनिकतम मशीनरी से लैस थे। सोवियत सहयोग से बहुत सी नयी उद्योग शाखाएं खोली गयीं, जैसे मोटर, ट्रैक्टर तथा विमान निर्माण, तेलशोधन, टर्बाइन निर्माण, बाल-बियरिंग उत्पादन, रेडियो यंत्र निर्माण, आदि। सोवियत संघ ने चीन को अनेक बिजलीघरों के निर्माण में भी सहायता दी। उसने १० हज़ार से अधिक सुप्रशिक्षित सोवियत विशेषज्ञों को चीन भेजा। लगभग २ हज़ार चीनी विशेषज्ञों और १ हज़ार वैज्ञानिकों ने सोवियत संघ आकर सोवियत विज्ञान और तकनीक की नवीनतम उपलब्धियों की जानकारी पायी,

लगभग ८ हज़ार चीनी नागरिकों ने सोवियत संघ में व्यावसायिक प्रशिक्षण पाया और ११ हज़ार से अधिक चीनी विद्यार्थियों को सोवियत उच्च विद्यालयों में शिक्षा दी गयी। सोवियत संघ ने चीनी लोक गणतंत्र को वैज्ञानिक-तकनीकी दस्तावेज़ों के २४ हज़ार सेट लगभग मुफ़्त दिये और विज्ञान, संस्कृति एवं स्वास्थ्य रक्षा प्रणाली के विकास में भी उसकी बड़ी मदद की।

वर्तमान परिस्थितियों में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार का चीन के प्रति क्या रुख़ है, इसका सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवी और पचीसवीं कांग्रेसों के दस्तावेज़ों में स्पष्टतः उल्लेख किया गया है। पचीसवीं कांग्रेस में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "अन्य देशों की भांति चीन के साथ भी अपने संबंधों में हम समानता, सर्वसत्ता तथा क्षेत्रीय अक्षुण्णता के आदर, एक दूसरे के मामलों में अहस्तक्षेप और बल प्रयोग न करने के सिद्धान्तों का पालन करते हैं।"

विश्व समाजवादी प्रणाली राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय की द्वन्द्वात्मक एकता का प्रदर्शन करती है। किन्तु इस एकता को व्यवहार में लागू कर पाना आसान प्रक्रिया नहीं है। कभी-कभी या तो राष्ट्रीय को या अन्तर्राष्ट्रीय को ही परम महत्त्व दिये जाने का ख़तरा पैदा हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय को अतिशय महत्त्व देने से राष्ट्रीय हितों की अवहेलना हो सकती है। किन्तु विशेष ख़तरा राष्ट्रीय को परम महत्त्व देने में है, क्योंकि इससे विश्व समाजवादी प्रणाली की शक्ति के मुख्य, निर्णायक तत्त्व – समाजवादी देशों की एकता – को हानि पहुंचती है।

व्ला० इ० लेनिन की जन्मशताब्दी से संबंधित सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की थीसिसों में कहा गया था: "व्ला० इ० लेनिन सर्वहारा पार्टियों के, क्रांतिकारी आन्दोलन की सभी टुकड़ियों के कार्यकलाप में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय के सही समन्वय को अन्तर्राष्ट्रीयतावादी नीति का मुख्य प्रश्न मानते थे... क्रांतिकारियों के हर दल द्वारा अपने देश की राष्ट्रीय तथा सामाजिक मुक्ति के कार्यभारों की कारगर पूर्ति विश्व समाजवादी क्रांति के आम हितों के लिए संघर्ष करने की अनिवार्य पूर्वशर्त है।"

विश्व समाजवादी प्रणाली के देशों के संबंधों में सच्चा समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद पाया जाता है। समाजवादी देशों की एकता इसपर

ग्राधारित है कि उनमें से प्रत्येक पूर्णतः स्वाधीन, सार्वभौम ग्रौर ग्रपने कार्यों के लिए उत्तरदायी है ग्रौर साथ ही समस्त समाजवादी राष्ट्रमण्डल के उत्कर्ष में दिलचस्पी रखता है। "समाजवादी ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों का सुसंगत पालन बंधु देशों के ग्रपने ग्रौर साझे हितों की ग्रधिकतम पूर्ति को सुनिश्चित करता है," सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना की पचासवीं वर्षगांठ से संबंधित सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की थीसिसों में कहा गया है।

समाजवादी राष्ट्रमण्डल में शामिल देशों की ग्राबादी, क्षेत्रफलों ग्रौर ग्रार्थिक क्षमताग्रों में ग्रन्तर है। किन्तु जिन मानदण्डों के ग्रनुसार उनके परस्पर संबंध बनते हैं, वे सबके लिए एक ही हैं। ये हैं समाजवादी ग्रन्तर्राष्ट्रीयतावाद के मानदण्ड। इन मानदण्डों या सिद्धान्तों के ग्राधार पर समाजवादी देशों की एकता सुदृढ़ बनती है ग्रौर उनके मिल-जुलकर समाजवाद तथा कम्युनिज़्म निर्माण की समस्याएं हल करने तथा विदेशनीतिक कार्यभार पूरा करने की प्रक्रिया ग्रागे बढ़ती है।

१९६९ के ग्रन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन ने "ग्राधुनिक युग में साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष के कार्यभार ग्रौर कम्युनिस्ट तथा मज़दूर पार्टियों एवं सभी साम्राज्यवादविरोधी शक्तियों के सहप्रयास" शीर्षक ग्रपने दस्तावेज़ में बल देते हुए कहा था कि "हर समाजवादी देश का विकास एवं सुदृ-ढ़ीकरण समस्त विश्व समाजवादी प्रणाली के ग्रागे बढ़ने की महत्त्वपूर्ण शर्त है।" इसी दस्तावेज़ में ग्रागे कहा गया था कि "समाजवाद की रक्षा सभी कम्युनिस्टों का ग्रन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।"

समाजवादी देशों की सुदृढ़ एकता राष्ट्रीय हितों की पूर्ति ग्रौर हर देश द्वारा समाजवाद को मज़बूत बनाने की देशभक्तिपूर्ण ग्राकांक्षाग्रों के साकार बनने की गारंटी है।

समाजवादी देशों के संयुक्त प्रयासों की उच्च प्रभाविता ग्रौर ग्रार्थिक विकास के जटिल कार्यभारों को सफलतापूर्वक हल करने की उनकी योग्यता समय द्वारा प्रमाणित की जा चुकी हैं। १९५०-१९७० की ग्रवधि में पारस्परिक ग्रार्थिक सहायता परिषद के सदस्य देशों का ग्रौद्योगिक उत्पादन ६.८ गुना बढ़ा, जबकि इन्हीं वर्षों में विकसित पूंजीवादी देशों के उत्पादन में केवल २.८ गुनी वृद्धि हुई। १९७१-१९७५ में परिषद के सदस्य देशों के उद्योग उन्नत पूंजीवादी देशों के उद्योगों की ग्रपेक्षा ४ गुना तेज़ी से

बढ़े। १९७५ में समाजवादी राष्ट्रमण्डल के देशों ने साझा मण्डी के देशों के मुक़ाबले ढाई गुना अधिक औद्योगिक माल तैयार किया।

आज समाजवादी देशों के बीच बड़े पैमाने पर उत्पादन-तकनीकी सहयोग हो रहा है। सोवियत संघ पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के अन्य देशों को बिजली यंत्र, बड़े डीज़ल इंजन, मोटरगाड़ियां, कृषि मशीनें, खदान उपकरण, रासायनिक खादें, तेल, गैस और बहुत से उद्योगों के लिए कच्चे माल सप्लाई करता है और बदले में इन देशों से तरह-तरह के माल पाता है। १९७१–१९७५ में परिषद के अन्य सदस्य देशों के साथ सोवियत संघ का व्यापार दोगुने से अधिक बढ़ा और अब २६ अरब रूबल प्रति वर्ष के बराबर है। आधुनिक वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति की प्रगति उत्पादन के और संकेन्द्रण और विशिष्टीकरण को अनिवार्य बना देती है। उसके लिए बहुत ज़रूरी है कि समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्थाएं एक दूसरे के निकट आयें, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन हो और समाजवादी आर्थिक एकीकरण हर तरह से बढ़े।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की पचीसवीं कांग्रेस में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "जो हासिल किया जा चुका है, उसके सहारे अब हम अगला क़दम बढ़ा सकते हैं। अब दीर्घकालीन, सोद्देश्य कार्यक्रमों की तैयारी और पूर्ति ज़रूरी है। उनका लक्ष्य होगा संयुक्त प्रयासों से ऊर्जा, ईंधन तथा बुनियादी कच्चे मालों की बढ़ती हुई आवश्यकता की आपूर्ति करना, खाद्य पदार्थों तथा औद्योगिक उपभोक्ता मालों की मांग को अधिकाधिक पूरा करना, मशीननिर्माण के स्तर को ऊंचा उठाना और परिवहन के विकास में तेजी लाना।"

सोवियत संघ राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों और नवस्वाधीन अफ्रेशियाई देशों को जो निःस्वार्थ सहायता देता है, वह भी सोवियत संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों के पालन का एक ज्वलंत उदाहरण है।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रणाली के पतन के फलस्वरूप एशिया और अफ़्रीका में बड़ी संख्या में राष्ट्रीय राज्य पैदा हुए, जिससे विश्व के राजनीतिक ढांचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये और शक्ति संतुलन साम्राज्यवाद के पक्ष में नहीं रह गया। दूसरे महायुद्ध के बाद लगभग ७० राज्यों ने राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त की। सातवें दशक में ही ४४ भूतपूर्व उपनिवेश स्वाधीन बने हैं।

सारे विश्व के कम्युनिस्ट और सबसे पहले सोवियत संघ और समाज-वादी देशों के कम्युनिस्ट राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की सहायता करने को अपनी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी नीति का एक महत्त्वपूर्णतम कार्यभार मानते हैं।

१९६९ के अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन में बहुत सी मार्क्सवादी पार्टियों, विशेषत: भूतपूर्व उपनिवेशों के कम्युनिस्टों ने सोवियत जनता और समाजवादी देशों के लोगों के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का उल्लेख किया था। जोर्डन की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव फ़ुआद नसर ने कहा था: "सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों और अरब राष्ट्रों तथा उनके मुक्ति आन्दोलनों के बीच मैत्री और संघबद्धता के संबंध अपनी स्वतंत्रता तथा क्षेत्रीय अक्षुण्णता के हेतु अरब राष्ट्रों के संघर्ष, इज़रायली साम्राज्य-वादी आक्रमण के विरुद्ध और प्रगतिशील विकास जारी रखने तथा नये जीवन के निर्माण के लिए उनके संघर्ष का निर्णायक और मूलभूत कारक हैं।"

मोरक्को की मुक्ति तथा समाजवाद की पार्टी के महासचिव अली यत्ता ने अपने भाषण में कहा था: "हम इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं कि नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध दोगुने जोश से संघर्ष किया जाना चाहिये और सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों पर आधारित एकता और शोषक जनों, शोषक देशों के सर्वहारा और विश्व समाजवादी प्रणाली द्वारा मिलजुलकर काम किया जाना आवश्यक है।" साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्षरत जनों को समाजवादी देशों की बहुविध सहायता और अन्त-र्राष्ट्रीयतावाद का ऊंचा मूल्यांकन अन्य बंधु पार्टियों के प्रतिनिधियों के भाषणों में भी किया गया था।

आज भी विश्व में कई राष्ट्र उपनिवेशवाद के जूए तले पिस रहे हैं, उनमें से बहुत से साम्राज्यवाद से लोहा ले रहे हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवीं कांग्रेस में पेश की गयी केन्द्रीय समिति की रिपोर्ट में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "साम्रा-ज्यवाद पर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से जन्मी शक्तियों की ओर से और मुख्यत: एशिया और अफ़्रीका के नवस्वाधीन, साम्राज्यवादविरोधी रुझानवाले राज्यों की ओर से दबाव बढ़ता जा रहा है।" साथ ही उन्होंने उस नये तत्त्व का भी उल्लेख किया था, जो पिछले वर्षों में इस प्रक्रिया में प्रकट हुआ

है: "मुख्य बात तो यह है कि **बहुत से देशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष वस्तुतः सामन्तवादी और पूंजीवादी, दोनों तरह के शोषक संबंधों के विरुद्ध संघर्ष में बदलने लग गया है।"**

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की व्यावहारिक अभिव्यक्ति सबसे अधिक सोवियत-मिस्री संबंधों में देखने में आती है।

१९५६ का वर्ष सोवियत-मिस्री संबंधों के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मंजिल था। जब पश्चिमी राष्ट्रों ने मिस्र को असवान बांध के निर्माण में सहायता देने से इन्कार कर दिया, तो राष्ट्रपति नासिर ने स्वेज़ नहर कंपनी के राष्ट्रीकरण की घोषणा की, ताकि नहर के इस्तेमाल से होनेवाली आमदनी को बांध के निर्माण के लिए उपयोग किया जा सके। पश्चिम ने इस निर्णय का बहिष्कार किया और आर्थिक नाकेबंदी की धमकी दी। मगर जब धमकी से काम न बना, तो मिस्र पर त्रिपक्षीय हमला किया गया: पोर्ट-सईद में आंग्ल-फ़्रांसीसी सैनिक उतारे गये और इज़रायली टैंक सिनाई प्रायद्वीप में घुस आये।

सोवियत संघ ने मिस्री जनता का दृढ़ समर्थन किया और आक्रमण नाकाम रहा। शीघ्र ही सोवियत संघ और मिस्र के बीच आर्थिक संबंध तेजी से बढ़ने लगे। जनवरी, १९५८ में दोनों देशों ने एक आर्थिक तथा तकनीकी सहयोग संधि पर हस्ताक्षर किये। उसके बाद असवान बांध के निर्माण में सोवियत संघ की सहभागिता के बारे में भी कई समझौते किये गये।

पश्चिम से मिस्र को जो न मिल सका, वह उसे सोवियत संघ से मिला, जैसे औद्योगिक मशीनरी, निर्माण मशीनें, सुप्रशिक्षित विशेषज्ञ, आदि। सोवियत संघ ने मिस्र की प्रतिरक्षा क्षमता बढ़ाने में भी योग दिया।

सोवियत संघ के लिए मिस्र साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध और सामाजिक प्रगति के हेतु उसके संघर्ष में सहज सहयोगी था। हितों की इस समानता ने सोवियत-मिस्री मैत्री को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अल्पकालिक या जब-तब बदलनेवाला कारक नहीं, बल्कि स्थायी रूप से सक्रिय कारक बनाया है।

१९६७ में इज़रायली आक्रमण के समय सोवियत संघ ने मिस्र का साथ दिया। वह इज़रायल द्वारा कब्ज़े में लिये गये क्षेत्रों को लौटाने की

मांग करता है। अरब-इज़रायली झगड़े के न्यायसंगत निपटारे के लिए संयुक्त संघर्ष ने सोवियत-मिस्री संबंधों को और मज़बूत बनाया है और सारे विश्व को दिखा दिया है कि सोवियत संघ अपने मित्रों का पूरा-पूरा साथ देता है और कठिनतम परिस्थितियों में भी उनकी सहायता को तत्पर रहता है।

पिछले कुछ समय से मिस्री अरब गणराज्य के कुछ हल्के सोवियत-मिस्री संबंधों को नुक़सान पहुंचाने की जी-तोड़ कोशिशें कर रहे हैं। मिसाल के लिए, सोवियत-मिस्री मैत्री तथा सहयोग संधि को एकपक्षीय तौर पर रद्द कर दिया गया है।

मगर जैसा कि सो० सं० की कम्युनिस्ट पार्टी की पचीसवीं कांग्रेस में कहा गया था, सोवियत संघ मध्य पूर्व के सभी राज्यों के साथ संबंधों के विकास के लिए सभी तरह के प्रयास करने के पक्ष में है और वह उनमें से किसी के प्रति भी कोई द्वेषभाव नहीं रखता।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट तथा मज़दूर आन्दोलन के नेताओं का मत है कि सोवियत संघ तथा विश्व समाजवादी प्रणाली के साथ एकता का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की कसौटी है। यह सिद्धान्त महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के साथ पैदा हुआ था और विश्व समाजवादी क्रांति के विकास के साथ मज़बूत बना।

१९६९ के अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन में मंगोलिया की लोक क्रांतिकारी पार्टी के प्रथम सचिव युमजागिन त्सेदेन्बाल ने कहा था: "सोवियत संघ, जिसने सबसे पहले मानवजाति को समाजवाद का पथ दिखाया और अब सफलतापूर्वक कम्युनिज़्म का निर्माण कर रहा है, विश्व समाजवाद की मुख्य शक्ति और आधुनिक युग के क्रांतिकारी आन्दोलन का अभेद्य दुर्ग है। विश्व के पहले समाजवादी देश को ऐसा स्थान उसकी बढ़ती हुई आर्थिक तथा सैन्य शक्ति और साम्राज्यवादी आक्रामकों पर लगाम लगाने, समाजवादी देशों की क्रांतिकारी उपलब्धियों की रक्षा तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के समर्थन में उसके निर्णायक योगदान की वजह से ही नहीं दिया जाता है। उसे ऐसा स्थान इसलिए भी दिया जाता है कि आज की जटिल अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में लेनिन की पार्टी और सोवियत सरकार अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रति उच्च

उत्तरदायित्व, अपने अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा और सभी देशों के मेहनतकशों के मूलभूत हितों एवं मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रांतिकारी सिद्धान्तों की विजय के लिए तथा उन्हें तोड़ने-मरोड़ने, विकृत करने के सभी प्रयत्नों के ख़िलाफ़ संघर्ष का आदर्श प्रस्तुत करती हैं।"

इन सब तथ्यों के आधार पर त्सेदेन्बाल इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि "सोवियत संघ और उसकी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सच्ची बंधुत्वपूर्ण एकता और समाजवाद की स्थितियों के सुदृढ़ीकरण, शांति की रक्षा एवं राष्ट्रों की सुरक्षा की ओर लक्षित उनके भगीरथ प्रयासों का हर तरह से समर्थन सर्वदा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के अभिन्न अंग हैं।"

सूडान की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव स्वर्गीय अब्दल ख़ालिक महजूब ने कहा था: "विश्व समाजवादी प्रणाली की रक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य है, क्योंकि इस प्रणाली के भाग्य में उसमें शामिल राष्ट्र ही नहीं, वरन सारे विश्व के मज़दूर और सारे विश्व के जन भी रुचि रखते हैं।"

उरुग्वे की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम सचिव रोदनेय आरिस्मेन्दी ने इन सब विचारों का निचोड़-सा पेश करते हुए कहा था कि "विश्व के सभी क्रांतिकारियों के लिए आपसी एकता मज़बूत बनाने और समाजवादी प्रणाली, विशेषत: सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका बढ़ाने का सैद्धान्तिक महत्त्व है।"

इस तरह अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और देशप्रेम की समस्या का विश्लेषण दिखाता है कि सच्चा देशप्रेम सारे विश्व के मेहनतकशों के साझे ध्येय के प्रति निष्ठावान बनने में आड़े नहीं आता है। सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद में मातृभूमि के प्रति समर्पणभाव, उसे वर्गीय तथा राष्ट्रीय उत्पीड़न से मुक्त देखने की आकांक्षा और अन्य देशों के मेहनतकशों के सामाजिक प्रगति के संघर्ष के समर्थन का अविकल सामंजस्य पाया जाता है।

मार्क्सवादी पार्टियों का कार्यकलाप सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित होता है। ऐसा अनिवार्य भी है, क्योंकि उनमें विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के मज़दूर तथा अन्य मेहनतकश संगठनबद्ध होते हैं।

"राष्ट्रवादी बूर्जुआ चाहे किसी भी तरह के क्यों न हों," व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "उनसे सचेतन मज़दूर इस माने में भिन्न हैं कि वे, यानी मज़दूर, न केवल राष्ट्रों और भाषाओं की पूर्ण, सुसंगत

और अन्त तक क्रियान्वित **समानता** की, बल्कि **एक ही** सर्वहारा संगठनों में विभिन्न राष्ट्रों के मज़दूरों के सम्मिलित होने की भी हिमायत करते हैं।"* इसलिए जब रूस में सर्वहारा पार्टी बनी थी, तो उसने अपना नाम "रुस्स्काया पार्तिया बोल्शेविकोव" (रूसी जाति के बोल्शेविकों की पार्टी) नहीं, बल्कि "रोस्सीयस्काया पार्तिया बोल्शेविकोव" (रूस देश के बोल्शेविकों की पार्टी) रखा और इस तरह अपने एकाधिक राष्ट्रों तथा जातियों की पार्टी होने पर ज़ोर दिया। कम्युनिस्ट पार्टी ने आगे चलकर भी राष्ट्रीयता के आधार पर अपने संगठन बनाने का विरोध किया। व्ला० इ० लेनिन ने कई बार कहा था कि कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का निरन्तर पालन किये जाने के पक्षधर हैं और राष्ट्रीय अलगाव का विरोध करते हैं: "हम अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है।"** लेनिन अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्तों के सतत पालन को क्रांतिकारिता की असली कसौटी और मज़दूर वर्ग की विजयों की गारंटी मानते थे।

विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विशेषत: महत्त्वपूर्ण बन गया है। उसके बिना न तो सामाजिक प्रगति संभव है और न साम्राज्यवाद पर दबाव बढ़ाने के लिए सभी क्रांतिकारी शक्तियों को एकताबद्ध ही किया जा सकता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की पच्चीसवीं कांग्रेस में लेओनीद ब्रेज्नेव ने कहा था: "हम सोवियत कम्युनिस्ट सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की रक्षा को हर मार्क्सवादी-लेनिनवादी का पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं।"

चौबीसवीं पार्टी कांग्रेस ने सभी सोवियत नागरिकों में सोवियत देशप्रेम की भावना भरने, उन्हें अपनी समाजवादी मातृभूमि और उसकी जनता की महती उपलब्धियों पर गर्व करना सिखाने, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी बनाने, उनमें राष्ट्रवाद, अंधराष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय अलगाव के प्रति असहिष्णुता और सभी राष्ट्रों तथा जातियों के प्रति आदर-सम्मान की भावना का विकास करने के महत्त्व पर ज़ोर दिया था।

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'सूक्ष्म राष्ट्रवाद द्वारा मज़दूरों का भ्रष्टीकरण' (१९१४)।

**व्ला० इ० लेनिन: 'मज़दूर और किसान प्रतिनिधियों को पत्र' (१९१९)।

इसके विपरीत रुख़ अपनाये जाने का मतलब अन्ततः राष्ट्रवाद के गर्त्त में जा गिरना है, जो, जैसा कि व्ला० इ० लेनिन ने लिखा था, "फूट और विभाजन की अपनी कार्यनीति से... सभी राष्ट्रों, सभी नसलों और सभी भाषाओं के सर्वहाराओं के सन्निकटन तथा ऐक्यीकरण के महान उपदेश को **निस्सार** बना डालता है।"*

---

*व्ला० इ० लेनिन: 'बुन्द राष्ट्रवाद का नया शब्द' (१९०३)।

१०: मित्रों की नज़र में

विभिन्न देशों के राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ता, वैज्ञानिक, साहित्यकार, पत्रकार और सामान्य लोग सोवियत संघ आकर उसकी राष्ट्रीय नीति को व्यवहार में लागू किया जाता हुआ देखते हैं। स्वदेश लौटने पर वे इस विषय में पुस्तकें, लेख, आदि छपवाते हैं, बातचीतों और भाषणों में अन्य लोगों को अपने अनुभवों से परिचित कराते हैं। वे सब अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार और, जो सबसे मुख्य बात है, अपने वर्गीय और राजनीतिक दृष्टिकोण से उन महान क्रांतिकारी परिवर्तनों को समझने और बताने की कोशिश करते हैं, जो सोवियतों के देश में, उसकी जनता के जीवन में और एक ऐसे देश में आये हैं, जिसने विश्व में सबसे पहले नये जीवन का निर्माण शुरू किया और वैज्ञानिक, मानवतावादी सिद्धान्तों के आधार पर राष्ट्रीय प्रश्न को सुलझाया था।

स्पष्ट है कि सोवियत संघ के विषय में तरह-तरह की बातें कही और लिखी जाती हैं। कुछ लोग हैं, जो सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय नीति के सार को ग़लत रूप में पेश करते हैं, उसके क्रियान्वयन के तरीक़ों पर कीचड़ उछालते हैं और उसके नतीजों को विकृत करते हैं। किन्तु बहुत से ऐसे ईमानदार लोग भी हैं, जो सच-सच बताते और लिखते हैं कि उन्होंने सोवियत संघ में क्या देखा। इन परवर्तियों में विश्व के अनेक माने-जाने लोग हैं।

जवाहरलाल नेहरू, फ़ीदेल कास्त्रो, विलियम दे बुग्रा, ऊर्हो केक्कोनेन, ग्रल्जीयर्स नगर के भूतपूर्व फ़्रांसीसी मेयर पोल तूबेर, ग्रंग्रेज़ लेखक जान प्रीस्टले, स्वीडिश पत्रकार ग्रार्थर लुंकविस्ट, ग्रमरीकी विद्वान विलियम मैंडेल तथा के० लेमन, ग्रंग्रेज़ वैज्ञानिक दंपति कॉट्स, भारतीय इतिहासकार देवेन्द्र कौशिक ग्रौर बहुत से दूसरे लोगों ने सोवियत संघ में लेनिनीय राष्ट्रीय नीति की सफलता के बारे में काफ़ी-कुछ लिखा है।

सोवियत संघ में राष्ट्रीय समस्या का जिस तरह समाधान किया गया, उसके इतिहास में इन ग्रौर ग्रन्य राजनेताग्रों, राजनीतिक कार्यकर्ताग्रों तथा विद्वानों ग्रौर करोड़ों ग्राम लोगों की भी दिलचस्पी का कारण क्या है? संभवत: यह दिलचस्पी इसलिए पैदा हुई – ग्रौर यहां हम सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के "सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की पचासवीं जयन्ती की तैयारियों के बारे में" शीर्षक प्रस्ताव से एक ग्रंश उद्धृत करना चाहेंगे – कि "बहुराष्ट्रिक समाजवादी राज्य बनाने, हमारे जनों के संयुक्त प्रयासों से विकसित समाजवादी समाज का निर्माण करने ग्रौर जटिलतम राष्ट्रीय समस्या को सुलझाने के सोवियत ग्रनुभव को विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई है। यह ग्रनुभव सामाजिक तथा राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष करनेवाले सभी लोगों की ग्रतुलनीय मदद करता है।"

उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय प्रश्न विषयक सबसे ग्रधिक पुस्तकें ग्रौर लेख सोवियत संघ के पूर्वी जनतंत्रों से संबंधित हैं। सोवियत मध्य एशियाई जनतंत्रों में राष्ट्रीय नीति की विजय समाजवाद के मित्रों तथा वैरियों का ध्यान इतना ग्रधिक ग्राकर्षित क्यों करती है?

एशिया ग्रौर ग्रफ़्रीका के ग्रधिकांश देश बहुराष्ट्रिक हैं। उनमें बहुत से राष्ट्रों, जातियों, क़बीलों तथा ग्रन्य समुदायों के लोग रहते हैं, जिनके सामाजिक विकास के स्तरों में समरूपता नहीं है। इस वजह से इन देशों में राष्ट्रीय प्रश्न एक ग्राधारभूत प्रश्न बन जाता है। इस बात को भी ग्रनदेखा नहीं किया जा सकता कि उपनिवेशों से निकलते हुए साम्राज्यवादियों ने उनपर कुछ ऐसी व्यवस्थाएं थोप दी थीं, जिन्होंने पहले से ही जटिल ग्रौर उलझे हुए राष्ट्रीय संबंधों को ग्रौर बिगाड़ दिया।

ग्रत: स्वाभाविक ही है कि राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान के सोवियत तरीक़े में एशिया तथा ग्रफ़्रीका के जन बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। उनके

लिए सोवियत संघ का समृद्ध अनुभव न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पाने, बल्कि सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण करने का भी रास्ता दिखाता है।

इसके अलावा, एशिया के बहुत से जन सोवियत मध्य एशियाई जनों के जाति-बंधु हैं। समान जाति-मूल के अतिरिक्त उनके इतिहास तथा सांस्कृतिक विकास, रहन-सहन तथा परंपराओं, आदि में भी काफ़ी कुछ समानताएं हैं।

सोवियत सत्ता के आरंभिक वर्षों से ही मध्य एशिया पूर्व पर क्रांतिकारी प्रभाव डालने लगा। जैसा कि सोवियत पूर्व के एक प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता नारीमान नारीमानोव ने आलंकारिक भाषा में लिखा है, "तुर्किस्तान (वह क्षेत्र, जिसमें आज मध्य एशियाई जनतंत्र और क़ज़ाख़स्तान का एक हिस्सा स्थित हैं—अ० जे०) वह पुष्पोद्यान है, जिससे आसपास के पूर्वी मुल्कों की मधुमक्खियों को अपना आहार बटोरना है। तुर्किस्तान एक तरह से सोवियत व्यवस्था की आदर्श बानगी प्रस्तुत करता है।"

अतः अल्पविकसित देशों के जन अपने सामने खड़ी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और अन्य समस्याओं के समाधान की खोज में सोवियत पूर्वी जनतंत्रों की ओर ही अभिमुख होते हैं।

जैसा कि अमरीकी मध्य एशिया विशेषज्ञ एस० ज़ेन्कोव्स्की ने लिखा है, मध्य एशिया में दिलचस्पी "अधिकांश मुस्लिम जगत में छायी उत्तेजना के कारण और भी बढ़ जाती है।"*

स्पष्ट है कि मध्य एशियाई सोवियत जनतंत्रों में एशियाई तथा अफ़्रीकी जनगण द्वारा दिखायी जानेवाली दिलचस्पी सबको रास नहीं आती। इनमें सबसे पहले इतिहास को विकृत ढंग से पेश करनेवालों का नाम आता है, जो नहीं चाहते कि साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रणाली का उन्मूलन हो। कम्युनिज़्म के वैचारिक विरोधियों को जालसाज़ी का सहारा इसलिए लेना पड़ता है कि वे औपनिवेशिक दासता से मुक्त पूर्व के देशों को रूस के भूतपूर्व पिछड़े जनों के सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान के

---

* S.Zenkowsky, *Pan-Turkism and Islam in Russia*, Cambridge (Mass.), 1960, p. VII.

अनुभव को ठीक-ठीक समझने से रोकना और उन्हें "कम्युनिस्ट दासता" का हौवा दिखाकर डराना चाहते हैं।

मिसाल के लिए, अंग्रेज सोवियतविशेषज्ञ डब्ल्यू० कोलार्ज़ ने लिखते हैं कि "पश्चिमी देशों को रूस को विश्व मंच पर एक ऐसी शक्ति की भूमिका में उतरने से रोकना चाहिये, और रोक भी सकते हैं, जो उन समस्याओं को हल करेगी, जिनका शेष मानवजाति समाधान नहीं खोज पायी है और जिनमें राष्ट्रीय समस्या तथा पराधीन देशों की समस्या भी शामिल हैं।)* ऐसा ही विचार ब्रिटिश औपनिवेशिक सेवा के एक भूतपूर्व अधिकारी एम० ज़ीन्किन ने भी व्यक्त किया है, जो अल्पविकसित देशों को केवल पश्चिमी देशों के पदचिह्नों पर चलने और केवल पूंजीवाद की मदद पर भरोसा करने की सीख देते हैं।** जैसा कि स्पष्ट है, सामाजिक प्रगति के विरोधियों ने अपने सामने यही वर्गीय राजनीतिक लक्ष्य रखा है कि "जैसे भी हो, नवस्वाधीन राष्ट्रों को कम्युनिस्ट विचारधारा का अनुयायी बनने से रोका जाये।"***

अब देखें कि जिन लोगों ने सोवियत संघ की वास्तविकता का यथार्थपरक मूल्यांकन किया है, वे क्या कहते हैं।

फ़िनलैण्ड के राष्ट्रपति ऊर्हो केक्कोनेन ने मई, १९५८ में उज़्बेकिस्तान की यात्रा के बाद कहा था: "... आज के उज़्बेकिस्तान से परिचय पानेवाले भ्रमणार्थी को यह न तो भुलाना चाहिये और न वह भूल ही सकता है कि चालीस वर्ष पहले यह इलाक़ा पिछड़ा हुआ और कम विकसित था। आप कपास उगाते थे, मगर उसकी खेती का तरीक़ा बहुत सदियों पहले जैसा ही था। आपके यहां उद्योग नहीं थे। आपकी अधिकांश आबादी निरक्षर थी। इन चालीस वर्षों में कितना बड़ा परिवर्तन आया है! और यह परिवर्तन सोवियत व्यवस्था के अन्तर्गत आया है!"

और प्रसिद्ध फ़्रांसीसी सामाजिक कार्यकर्त्ता एलन ले-लेआप कहते हैं:

"मैं यह देखने की कामना से उज़्बेकिस्तान पहुंचा कि चार दशक पहले जो देश रूसी साम्राज्य का उपनिवेश था, उसकी जनता आज कैसे

---

*W. Kolarz, *Russia and her Colonies*, London, 1952, p. 314.

**M. Zinkin, *Development in Free Asia*, London, 1956, p. 4.

***J. Jörgen, K Kerschagl, K. Zastrow, *Entwicklung sländer Zwischen Ost und West*, München, 1964, S. 7.

रहती है... यहां मैंने जो कुछ देखा, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि उज़्बेक जनता ने पूर्ण स्वतंत्रता पा ली है और आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में बड़ी भारी प्रगति की है।

"महत्त्व की बात तो यह है कि इस प्रगति के साथ-साथ जनता की राष्ट्रीय परंपराओं को सुरक्षित रखा गया है। इससे सिद्ध होता है कि जनतंत्र का विकास जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप है और वह उसे स्वाभाविक ऐतिहासिक क्रिया मानती है।"

भूतपूर्व रूसी साम्राज्य के पिछड़े हुए क्षेत्रों की आर्थिक प्रगति के बारे में बहुत से विदेशी लेखकों ने भी कहा और लिखा है।

अमरीकी विद्वान मैंडेल और लेमोंट ने "मध्य एशियाई जनतंत्रों की अभूतपूर्व प्रगति" और "पश्चिमी जर्मनी जैसे आर्थिक दृष्टि से अतिविकसित देश की तुलना में" सोवियत उक्रइना की बहुत बड़ी सफलताओं की चर्चा की है। उनके मत में सोवियत संघ के विभिन्न जनतंत्रों के इतिहास का अध्ययन करना और विशेषतः इस प्रश्न की गवेषणा करना आवश्यक है कि सोवियत मध्य एशिया के राष्ट्रों ने कैसे न केवल सामाजिक और राजनीतिक, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी रूस के साथ, जिसके वे पहले उपनिवेश थे, समानता का दर्जा पाया।*

१९७१ की गरमियों में सोवियत क़िर्गिज़स्तान की राजधानी फ़्रूंज़े में एक अन्तर्राष्ट्रीय कृषि गोष्ठी हुई थी। क़िर्गिज़स्तान ने उसमें भाग लेने आये विदेशी वैज्ञानिकों को बहुत प्रभावित किया।

"सोवियत पूर्व के इस जनतंत्र की उपलब्धियां प्रशंसनीय हैं," भारतीय वैज्ञानिक प्रो० गोपाल पार्थसारथी ने कहा था। "यहां अर्थव्यवस्था और संस्कृति बड़े सुव्यवस्थित ढंग से विकास कर रही हैं। सोवियत पूर्व के अन्य इलाक़ों की भांति क़िर्गिज़स्तान भी पहले रूस का एक पिछड़ा हुआ सीमान्त प्रदेश था। मगर आज यहां उद्योग और कृषि, दोनों फल-फूल रहे हैं।"

गोष्ठी में भाग लेने आये एक अन्य प्रतिनिधि, सीरियाई कृषि व्यावसायिक प्रशिक्षण विद्यालय के निदेशक, राष्ट्रीय अफ़्रेशियाई एकता

---

*C. Lamont, *The Peoples of the Soviet Union*, New York, 1946, p. 149; W. Mandel, *Russia Re-Examined. The Land, the People, and How They Live*, New York, 1964, pp. 48-50; *The Soviet Far East and Central Asia*, New York, 1946, p. XV.

समिति के सदस्य अब्दल हालीमइंद्रिसिये ने "सिनताश" सामूहिक फ़ार्म को देखने के बाद कहा था: "सामूहिक फ़ार्म में तरह-तरह की मशीनें और यंत्रीकरण का उच्च स्तर देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं।"

"भारत का किसान यंत्रीकरण के ऐसे स्तर की अभी कल्पना ही कर सकता है," प्रो० गोपाल पार्थसारथी ने कहा था।

सोवियत संघ में संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राजदूत ए० हैरीमन लिखते हैं: "माली दृष्टि से इसमें शक नहीं कि सोवियत शासनकाल में सोवियत संघ की जातियों ने अपनी रहन-सहन की परिस्थितियों में बहुत सुधार किया है।"* उनकी पुस्तक के दर्जनों पृष्ठ मध्य एशिया में अर्थव्यवस्था, संस्कृति, शिक्षा और स्वास्थ्यरक्षा के विकास से संबंधित आंकड़ों तथा तथ्यों से भरे पड़े हैं।

'वेस्तनिक वोस्पितानिया' (शिक्षा समाचार) नामक पत्रिका के १९०८ के एक अंक में हिसाब लगाया गया था कि शिक्षा के विकास की तत्कालीन रफ़्तार को देखते हुए मध्य एशिया में निरक्षरता का उन्मूलन करने के लिये ४६०० वर्षों की ज़रूरत पड़ेगी। मगर सोवियत सत्ताकाल में यह काम बीसगुना तेज़ी से पूरा कर लिया गया। इसीलिए मध्य एशियाई जनतंत्रों में संस्कृति और शिक्षा की अभूतपूर्व प्रगति की हर कोई इतनी अधिक तारीफ़ करता है।

अप्रैल, १९६० में उज़्बेकिस्तान की यात्रा पर आये हुए श्रीलंका के अध्यापकों के प्रतिनिधिमंडल के नेता के० दोसानायके ने इस संबंध में कहा था: "यहां बहुत कम समय में ही निरक्षरता का पूर्ण उन्मूलन कर दिया गया, इसी तथ्य से स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था का संगठन बहुत अच्छा है और राज्य शिक्षा पर बहुत ध्यान देता है। सोवियत शिक्षा व्यवस्था का अनुभव हम श्रीलंकाई अध्यापकों के लिए लाभदायी होगा... आपकी जन शिक्षा प्रणाली इतनी अच्छी है कि अन्य देशों को उसका अनुकरण करने से लाभ ही होगा।"

संयुक्त राष्ट्र संघ की शिक्षा विशेषज्ञ जूलिया हैण्डरसन ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा था, "मैं समझती हूं कि उज़्बेक जनता ने शिक्षा के क्षेत्र में न केवल एशियाई देशों, बल्कि विश्व के अधिकांश देशों में भी

---

*A. Harriman, *Peace with Russia*, New York, 1959, pp. 25-35.

एक सबसे ऊंचा स्तर हासिल किया है। हर कोई देख सकता है कि इस जनतंत्र में पूर्ण साक्षरता है और यहां तकनीकी तथा आम शिक्षा का स्तर बहुत ऊंचा है।"

उज़्बेकिस्तान में एक नाभिकीय भौतिकी संस्थान है, जिसके पास अपना परमाणु रियेक्टर भी है। अप्रैल, १९६३ में उसका मुआयना करने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु शक्ति एजेंसी के तत्कालीन महानिदेशक ज़िग्वार्ड एकलुंड ने प्रेस रिपोर्टरों को बताया था: "मेरी यह चौथी सोवियत संघ यात्रा है और उसने मेरी इस धारणा की पुष्टि कर दी है कि सोवियत संघ में विज्ञान और तकनीक के विकास को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता है। मैंने मास्को में और उसके आसपास कई वैज्ञानिक संस्थाएं देखीं, मगर मुझे इसकी आशा नहीं थी कि विज्ञान तथा तकनीक के प्रति ऐसा ही रवैया उज़्बेकिस्तान जैसे मास्को से दूर स्थित इलाक़ों में भी देखने को मिलेगा।"

"यहां ताशक़न्द में आप अपनी आंखों से देख सकते हैं कि किस तरह प्राचीन संस्कृति और सभ्यतावाली जनता अपनी पुरानी परंपराओं को सुरक्षित रखते हुए असामान्य उत्साह से और आश्चर्यजनक तेज़ी से नये समाज का निर्माण कर रही है," अपनी उज़्बेकिस्तान यात्रा के अन्त में प्रसिद्ध बेल्जियन महिला सामाजिक कार्यकर्त्ता इज़ाबेला ब्लूम ने कहा था। "समाजवाद प्राचीन संस्कृति को नष्ट या अस्वीकार नहीं करता। वह सभी प्रगतिशील तत्त्वों को जीवनदान करता है।"

आधुनिक उज़्बेकिस्तान में अतीत की उत्कृष्ट परंपराएं सुरक्षित रखे जाने के बारे में अंग्रेज़ अध्यापिका डायाना लेविन ने भी लिखा है:

"वर्तमान द्वारा समृद्ध अतीत को सुरक्षित रखा जाता है, स्कूलों में उसका अध्ययन किया जाता है। इसका एक प्रमाण समरक़ंद और अन्य नगरों के पुराने स्मारक हैं, जिन्हें देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं। पुरानी किंवदंतियों और काव्यों के आधार पर नाटक और आपेरा रचे जाते हैं। पुराने नृत्यों का पारंपारक, पुराना रूप सुरक्षित रखते हुए उन्हें आधुनिक बैले रचनाओं में इस्तेमाल किया जाता है। उज़्बेकिस्तान की युवा पीढ़ी अतीत के महान खगोलशास्त्रियों, गणितज्ञों, दार्शनिकों और वास्तुकारों से भली-भांति परिचित है..."

अपनी उज़्बेकिस्तान यात्रा के अनुभवों का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए डायाना लेविन उज़्बेक जन की मौलिक संस्कृति और उसकी राष्ट्रीय

विशेषताओं पर ज़ोर देती हैं: "जिस तरह इंग्लैण्ड से भिन्न वातावरण दिखते ही मैं निश्चित रूप से जान जाती हूं कि मैं फ़्रांस या किसी और देश में हूं, उसी तरह यहां भी मैंने लोगों की भाषा, शक्ल-सूरत, राष्ट्रीय कला तथा शिल्प, कविता और संगीत और उज़्बेक भाषा में छपनेवाले समाचारपत्रों की संख्या से महसूस कर लिया कि मैं उज़्बेकिस्तान में हूं, एक ऐसे देश में हूं, जिसकी अपनी विशिष्ट परंपराएं हैं।"

"सोवियत नागरिकों ने साहित्य की तरह नाटक और कला का भी आनन्द लेना सीख लिया है," श्रीलंकाई लेखक सिरीस्सेन अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं। "उनके लिए थियेटर जाना, नाटक या फ़िल्म देखना और कला का आनन्द लेना कोई बड़ी बात नहीं है। लोग अब कला का रसास्वादन करना जान गये हैं। सोवियत संघ में साहित्य, कला, नाटक और संगीत के साथ सदा एक विशेषण लगाते हैं और वह है "जन"। मगर इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा कि उनका स्तर गिर गया है। मुख्य अभिप्राय यह होता है कि उनका स्तर सुरक्षित रखा जाये और साथ ही आवश्यक शिक्षा द्वारा लोगों को उनका मूल्य करना, उन्हें समझना सिखाया जाये। सोवियत संघ में लोगों को ऐसा नहीं सोचने दिया जाता कि कला, संगीत, साहित्य, आदि को समझ पाना तथाकथित सुसंस्कृत लोगों या 'कला विशेषज्ञों' का ही जन्मसिद्ध अधिकार है। वहां लक्ष्य यह है कि आम लोगों का स्तर इतना ऊपर उठे कि वे भी इस सांस्कृतिक कार्यकलाप को समझ सकें और उसे प्रोत्साहन दे सकें। यह लक्ष्य पा लिया गया है, और साहित्य तथा कला को समझने तथा परखने की सोवियत लोगों की क्षमता में कोई संदेह नहीं किया जा सकता।"

मध्य एशिया के बारे में अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए बहुत से विदेशी अतिथि इस तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि उच्च संस्कृति के संपर्क में आने के लिए देहात के युवा वर्ग को शहर जाने की जरूरत नहीं है। इसके लिए देहात में ही सभी सुविधाएं और अवसर मौजूद हैं। युवा लोग स्कूलों, संगीत तथा नृत्य क्लबों में अनुभवी प्रशिक्षकों की देखरेख में कला शिक्षा पा सकते हैं। उच्च शिक्षा के लिए शहर जाने पर भी नौजवान लोग देहात से नाता नहीं तोड़ते। शिक्षा समाप्ति के बाद वे अपने गांव लौट आते हैं। इतना ऊंचा कर्त्तव्यबोध होने का कारण समाजवादी संस्कृति का बढ़ता हुआ प्रभाव है।

मई, १९६२ में ताशक़न्द रेडियो पर बोलते हुए प्रसिद्ध स्वीडिश लेखक यान ऐलिन ने कहा था: "पहले मैं उज़्बेकिस्तान के नाम से ही परिचित था। थोड़ा-बहुत तैमूर के बारे में और लड़ाइयों के इतिहास के बारे में भी सुना हुआ था। मगर जहां तक उज़्बेक जनता के सांस्कृतिक विकास का सवाल है, तो उसके बारे में मेरा ज्ञान नहीं के बराबर था।

"सच तो यह है कि यहां पहुंचने पर हमने अपने आप को बिल्कुल देहाती-सा महसूस किया। हम पश्चिमी लोग सोचते हैं कि दुनिया का केन्द्र हम ही हैं। मगर वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से हम छोर पर ही रहते हैं, जबकि संस्कृति के हृदय की असली धड़कन यहां, आपके इलाक़े में ही सुनी जा सकती है और वह भी हमारे यहां के मुकाबले कहीं अधिक तेज़ी के साथ और कहीं अधिक लंबे समय तक।"

संस्कृति के स्तर का एक सूचक स्वास्थ्य व्यवस्था है।

श्रीलंका से डाक्टर तांबिया सोवियत संघ आये थे। वह विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञ भी रह चुके हैं। उन्होंने एक पुस्तिका लिखी है, जिसका नाम है – "उज़्बेकिस्तान – भूतपूर्व ज़ारशाही उपनिवेश"।

संदेह, अनिश्चय, अविश्वास, हर आंकड़े और तथ्य में मीनमेख निकालना, सोवियत संघ में जो देखना था, उसके प्रति बहुत ही आलोचनापूर्ण रुख – इन सब बातों को लेकर डाक्टर तांबिया ने अपनी यात्रा शुरू की। मगर पहले ही अनुभवों ने उनका रवैया बदल दिया। वह क्षयरोग, पेचिश, मलेरिया और बहुत से अन्य रोगों के उन्मूलन में, जिनसे एशियाई देशों में हर साल लाखों लोग कालकवलित हो जाते हैं, सोवियत स्वास्थ्य व्यवस्था की शानदार सफलताएं देखकर दंग रह गये। वह बड़े हर्ष के साथ उज़्बेकिस्तान के चिकित्साकर्मियों की उस बहुत बड़ी संख्या का उल्लेख करते हैं, जिसकी तुलना एशिया के किसी भी देश से नहीं की जा सकती।

डाक्टर तांबिया लिखते हैं कि देहातों में भी स्वास्थ्य सेवा का प्रबंध उतना ही अच्छा है, जितना कि शहरों में और राज्य मेहनतकशों के स्वास्थ्य की देखभाल पर बहुत साधन ख़र्च करता है। उज़्बेकिस्तान में स्वास्थ्य सेवा के प्रबंध के अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि "मध्य एशिया में स्वास्थ्य व्यवस्था की प्रगति के अध्ययन से शेष सारे एशिया को बहुत फ़ायदा हो सकता है।"

अमरीकी मनोरोगचिकित्सक फ़्रैंक हेल का मत भी काफ़ी लाक्षणिक है। वह एक पर्यटक के रूप में सोवियत संघ की यात्रा पर आये थे। वह कहते हैं: "सोवियत संघ में मुझे स्वास्थ्यरक्षा की जो व्यवस्था देखने को मिली, वह मेरी राय में सबसे उपयुक्त, मानवतावादी और सभी लोगों की पहुंच के भीतर है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये मेरे पास पर्याप्त समय था। थ्रोम्बोफ़्लेबाइटिस के पुराने रोग के पुन: उभर जाने की वजह से मुझे समरक़ंद में मजबूरन रुकना पड़ा। इस बीमारी का मैं पहले भी कई देशों के क्लिनिकों में इलाज करवा चुका हूं। मगर समरक़ंद में मुझे सबसे कुशल सहायता दी गयी। यहां मैंने ऐसे विशेष दोलनमापी और अन्य नवीनतम चिकित्सा उपकरण देखे, जो संयुक्त राज्य अमरीका में भी देखने को नहीं मिले थे।

"महान चिकित्साशास्त्री इब्न सिना का प्रशंसक होने के नाते मुझे यह कहते हुए ख़ुशी होती है कि उनकी मातृभूमि में विज्ञान तेज़ी से विकास कर रहा है। बात तकनीकी सज्जा और डाक्टरों के व्यावसायिक प्रशिक्षण की ही नहीं है। ब्रसेल्स में एक क्लिनिक में जब मैं इलाज करवा रहा था, तो मैं बड़ा अकेलापन महसूस करता था और सोचता था कि यह भाषा न जानने की वजह से है। मगर मैं तो रूसी या उज़्बेकी भी नहीं जानता और फिर भी मैंने कभी अकेलापन महसूस नहीं किया। अपने शहर से दूर परदेस के अस्पताल में मैं सदा डाक्टरों और नर्सों की हार्दिकता को अनुभव करता रहा। देखभाल और सहानुभूति सबसे अच्छी औषधि हैं और यह चमत्कारी औषधि यहां सभी रोगियों के लिये पर्याप्त मात्रा में है। फिर आपके यहां इलाज पूरी तरह नि:शुल्क है। सोवियत संघ के रोगी मेरे बहुत से देशवासियों की चिन्ता को नहीं समझ सकते, जिनके लिये इलाज बहुत बड़ी वित्तीय समस्या है, क्योंकि संयुक्त राज्य अमरीका में अधिकांश अस्पताल तथा क्लिनिक प्राइवेट हैं और उनमें फ़ीस देनी पड़ती है।"

विदेशी प्रेक्षक हमारे देश के लोगों के जीवन, रहन-सहन और माली हालत पर भी बड़ा ध्यान देते हैं।

सोवियत संघ की यात्रा से लौटने पर भारतीय लेखक ख़्वाजा अहमद अब्बास ने एक लेख में लिखा था:

"मैं न केवल मास्को और लेनिनग्राद में सोवियत लोगों से मिला।

मेरी मध्य एशिया और काकेशियापार के जनतंत्रों के बहुत से लोगों से बातचीत भी हुई। हर जगह मुझे अक्तूबर क्रांति की देन, सुंदर नये जीवन के दर्शन हुए।

"ताशक़न्द के निकट एक सामूहिक फ़ार्म में ८१ वर्षीय मुहम्मद तुलग़न ने मुझे बताया कि क्रांति से पहले वह ज़मींदार के यहां मजूरी करता था और उसके पास न ज़मीन थी, न घर था और न उसे कोई नागरिक अधिकार ही मिले हुए थे। मैंने उससे पूछा कि अक्तूबर क्रांति के बाद उसे क्या मिला। उसने जो जवाब दिया, उसका हर शब्द मैंने नोट कर लिया :

"'मुझे आज़ादी मिली... अब मैं ज़मींदार का ग़ुलाम न था... मुझे घर मिला... अभी-अभी आपने उसे देखा है... सामूहिक फ़ार्म में हिस्से के अलावा मुझे अपनी ज़मीन मिली... गाय मिली... चार भेड़ें मिलीं... बहुत सी बत्तख़ें और मुर्ग़ियां मिलीं। आप उन्हें देख रहे हैं। मुझे सब कुछ मिला और मेरे बच्चे आज़ादी से सांस ले सकते हैं...' तभी हमारी बगल से एक मोटर साइकिल गुज़री, जिसपर दो मुस्कराते हुए युवा लोग बैठे थे। 'यह मेरी पोती और उसका पति है।'

"मैंने पहले सफ़ेद दाढ़ीवाले बूढ़े को देखा, जिसका चेहरा झुर्रियों से भरा था, और फिर दूर ग़ायब होती मोटर साइकिल को देखा: यहां उज़्बेकिस्तान का अतीत और वर्तमान थे। उनके बीच टकराव नहीं, बल्कि सामंजस्य था। बूढ़ा वैसे ही खुश था, जैसे कि किसान अच्छी फ़सल पाने के बाद होता है।"

विदेशी मेहमानों ने सोवियत जनों की समानता और बंधुत्वपूर्ण मैत्री के बारे में भी काफ़ी हार्दिक उद्‌गार प्रकट किये हैं। वे पहले के बिखरे हुए राष्ट्रों और जातियों की अभूतपूर्व एकजुटता का उल्लेख करते हैं और इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि यह क़ानूनी तौर पर ही नहीं, बल्कि यथार्थ में, जीवन के सभी क्षेत्रों में राष्ट्रों की समानता की स्थापना की बदौलत ही संभव हुआ है। यही वह शक्ति थी, जिसने परस्पर बिलगाव की उस दीवार को तोड़ा, जो पहले रूस के विभिन्न जनों के बीच खड़ी थी।

अंग्रेज़ लेखक जान प्रीस्टले ने उज़्बेकिस्तान की यात्रा के बाद लिखा था: "मास्को से दो हज़ार मील की दूरी पर विभिन्न नसलों के लोग, जिनमें वे जन भी शामिल हैं, जिनके बीच हज़ारों सालों से परंपरागत

शत्रुता चली आ रही थी, शांतिपूर्वक और हिलमिलकर एक ही शहर में रहते हैं और अपने जीवन से संतुष्ट हैं।"

सोवियत संघ के जनगण की मैत्री का आधार क्या है, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पूंजीवादी देशों के प्रगतिशील बुद्धिजीवी सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी को उसकी राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन में निदेशित करनेवाली गहन अन्तर्राष्ट्रीयतावादी भावना और नयी सामाजिक तथा राज्य व्यवस्था की महती शक्ति का उल्लेख करते हैं। अंग्रेज़ लेखक जैक लिंडसे बताते हैं कि युद्ध के बाद से उन्होंने तीन बार सोवियत संघ की यात्रा की और हर बार उन्हें इस देश में मानव व्यक्तित्व के विकास और नये स्वस्थ समाज के निर्माण ने ही सबसे अधिक प्रभावित किया।

लेनिनवादी राष्ट्रीय नीति की विजय के महान प्रगतिशील महत्त्व पर ज़ोर देते हुए बहुत से विदेशी अतिथि इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सोवियत मध्य एशिया में उन्होंने जो कुछ देखा, वह औपनिवेशिक प्रणाली के लिये एक प्रकार की दण्डाज्ञा है। उपनिवेशों की जनता, नवस्वाधीन और नये जीवन के निर्माण में रत देशों की जनता जिन चीज़ों के स्वप्न देखती है, वे सोवियत संघ में हासिल की जा चुकी हैं।

अनेक देशों के प्रगतिशील लोग राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान से संबंधित सोवियत अनुभव का अध्ययन करते हैं, ताकि अपने देश की परिस्थितियों के अनुकूल ढालकर उससे लाभ उठाया जा सके। इस संबंध में भारतीय विद्वान देवेन्द्र कौशिक का शोध प्रबंध "मध्य एशिया में लेनिनीय राष्ट्रीय नीति का क्रियान्वयन (१९१७–१९३७)" उल्लेखनीय है, जिसके लिए १९६५ में ताशक़न्द के लेनिन राजकीय विश्वविद्यालय ने उन्हें पी-एच० डी० की डिग्री दी थी। इस कृति में उन्होंने भारत के लिये सोवियत राष्ट्रीय नीति के सिद्धान्तों की उपयोगिता को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया है। मध्य एशिया के जनों के समाजवाद में संक्रमण के अनुभव के अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के बारे में लिखे गये शोधप्रबंध के लिए १९७५ में नाइजीरियाई विद्वान ओदोगू एग्बूने को भी पी-एच० डी० की पदवी प्राप्त हुई।

फ़्रूंज़े में हुई अन्तर्राष्ट्रीय कृषि गोष्ठी में भाग लेनेवालों ने मध्य एशिया में आये समाजवादी परिवर्तनों के विश्वव्यापी महत्त्व का उल्लेख किया था। यह गोष्ठी सोवियत अफ़्रेशियाई एकता समिति और सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी द्वारा आयोजित की गयी थी और उसमें एशिया,

अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के २६ देशों के प्रतिनिधि और सोवियत संघ के कई वैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता उपस्थित थे।

गोष्ठी के आयोजकों के नाम अपने धन्यवाद पत्र में विदेशी प्रतिनिधियों ने विश्वास प्रकट किया कि गोष्ठी नवस्वाधीन देशों के लिये, जो राजनीतिक स्वाधीनता पाने के बाद अब प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक सुधार लाने तथा औपनिवेशिक दासता के अवशेष मिटाने के लिये दृढ़तापूर्वक संघर्ष कर रहे हैं, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से लाभदायी सिद्ध होगी।

प्रतिनिधियों ने बताया कि सोवियत पूर्व और मंगोलिया का अनुभव एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के नवोदित देशों के लिये और विशेषत: जिन देशों ने विकास का ग़ैरपूंजीवादी पथ चुना है, उनके लिये सर्वोत्तम मार्गदर्शक है।

वेनेजुएला के प्रतिनिधि फ़ेलिक्स वेरिस्सारियो ने मत व्यक्त किया कि "सोवियत देहात के विकास का सही रास्ता व्ला० इ० लेनिन ने दिखाया था। हमें विश्वास है कि एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमरीका के जन भी अन्तत: वही रास्ता चुनेंगे, जिसका निर्देश सोवियतों के देश के नेता ने किया था।"

"आज के मध्य एशियाई जनतंत्रों में मुझे अपने देश का भविष्य दिखायी देता है," ये उद्‌गार गोष्ठी में उपस्थित सोमाली के योजना मंत्रालय के महानिदेशक जम्मा राबिले ने व्यक्त किये थे। बहुत कुछ ऐसी ही बात भारत के प्रो० गोपाल पार्थसारथी ने भी कही: "सोवियत मध्य एशिया को... एशिया और अफ़्रीका के विकासमान देशों के लिये मापदण्ड माना जा सकता है।"

ये उन लोगों के निष्कर्ष हैं, जिन्होंने समाजवादी देश में प्रत्यक्ष रूप से देखा था कि सबसे प्रगतिशील व्यवस्था – समाजवाद – और न्यायसंगत राष्ट्रीय नीति जनगण को क्या दे सकती है।

समाजवाद राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान और राष्ट्रों के उत्थान तथा सन्निकटन के लिये सभी आवश्यक परिस्थितियां तैयार करता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है कि राष्ट्रीय समस्या का समाधान समाजवाद की एक सबसे बड़ी उपलब्धि है।

सोवियत सत्ता ने सभी राष्ट्रों और जातियों की प्रगति का ध्यान रखा है और रखती है। किन्तु उन जनों की उन्नति के लिये वह विशेष रूप से प्रयत्नशील रहती है, जो ज़ारशाही काल में उत्पीड़न के शिकार थे। लेनिनीय राष्ट्रीय नीति की बदौलत इन जनों का सदियों पुराना पिछड़ापन ख़त्म हो गया है और पूंजीवादी अवस्था से गुज़रे बिना सामन्तवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण करके वे आधुनिक अग्रणी राष्ट्रों के स्तर पर पहुंच गये हैं।

समाजवाद की परिस्थितियों में राष्ट्रों का विकास दिखाता है कि समाजवादी आन्दोलन, व्ला० इ० लेनिन के शब्दों में, "मानव समाज के नये और ऐसे उच्चतर रूपों का सृजन करता है, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय एकता के ज़रिये और इस शर्त पर कि मौजूदा राष्ट्रीय दीवारें न रहें, पहली बार हर राष्ट्र के मेहनतकश लोगों की न्यायसंगत आवश्यकताएं और प्रगतिशील आकांक्षाएं पूरी होंगी।"*

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष का बढ़ना इस बात का प्रमाण है कि जनगण की मुक्ति अपरिहार्य है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रों की असमानता के पूर्ण उन्मूलन के लिये परमावश्यक है कि पहले पूंजीवाद का ख़ात्मा किया जाये।

विश्व समाजवादी प्रणाली और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट तथा मज़दूर आन्दोलन के अस्तित्व और बढ़ते हुए राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की बदौलत हमारे युग के इस महान ध्येय की सफल परिणति हो सकती है। पूंजीवादी देशों के मेहनतकश और सभी उत्पीड़ित राष्ट्र विश्व समाजवादी प्रणाली और सोवियत संघ को शांति तथा जन मैत्री का आधारस्तंभ और रक्षक मानते हैं।

सोवियत संघ में कम्युनिज़्म का निर्माण सारी सोवियत जनता का अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कार्यभार है और, जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है, यह कार्यभार "सारी विश्व समाजवादी प्रणाली, अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा और सारी मानवजाति के हितों के अनुरूप है।"

---

*व्ला० इ० लेनिन : 'समाजवादी इंटरनेशनल की स्थिति और कार्यभार' (१९१४)।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की
विषयवस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में
आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा।
आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी
हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।
कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को,
सोवियत संघ।